आठ एकांकी नाटक

(आठ कलाकारों के मनोरंजक एकांकी नाटको का संग्रह)

संपादक

डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच०, डी०

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

इलाहाबाद

१९५५.] [मूल्य २)

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

सूची

सोहागबिंदी नाटक

यूनिवर्सिटी की आज्ञा से हटा दिया गया है।

हिन्दी-एकांकी नाटक

आधुनिक युग की प्रेरणा के कारण ही बड़े नाटको के रहते हुए भी एकांकी की आवश्यकता पड़ी। कुछ लोगो को भ्रम है कि आधुनिक साहित्य मे एकांकी कृत्रिम चीज़ है, और साहित्य मे उसका कोई स्थान नहीं, वह केवल फैशन के कारण अपनाया गया है। उन्हे यह समझना चाहिए कि आधुनिक संघर्षमय जीवन में समयाभाव के कारण जिस प्रकार उपन्यास के होते हुए भी कहानी का जन्म हुआ, महाकाव्य के होते हुए भी मुक्तक प्रगीत और खण्डकाव्य की आवश्यकता पड़ी; उसी प्रकार बड़े नाटको के होते हुए भी एकांकी का प्रवेश जीवन की आवश्यकता के कारण हुआ। काव्य, आलोचना, निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक—हमारे साहित्य के प्रत्येक अंग पर पाश्चात्य साहित्य का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि सारा साहित्य पश्चिम के फैशन के कारण अपनाया गया। यदि एकांकी के पीछे जीवन की आवश्यकता की प्रेरक शक्ति न होती तो एकांकी आज इतना लोकप्रिय न बन पाता। इसलिए जनता की अभिरुचि ही बतला रही है कि एकांकी हमारे साहित्य मे गौरव-पूर्ण स्थान रखता है। और उसका भविष्य आशामय और उज्ज्वल है।

साहित्य में एकाकी का स्थान

संस्कृत-साहित्य में एक अंक के बहुत से रूपक होते थे।

भाण, व्यायोग, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, गोष्ठी आदि प्राय: १८-२० प्रकार के एकांकी थे। इसकी रचना मे भेद का प्रधान आधार वृत्ति, संधि, नायक-नायिका और कथानक होते थे। इसीलिए कुछ विशेष लक्षणो की संकुचित परिधि मे घिर कर ही लेखक इनकी रचना करते थे और इन्ही विभिन्न लक्षणो के अनुसार एकांकियों के विभिन्न नाम थे, जैसे वीथी एकांकी का लक्षण था—इसका नायक कल्पित हो, आकाश-वाणी द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति हो, अर्थ-प्रकृतियों के साथ-साथ मुख और निर्वहण संधियाँ हो, शृंगार रस प्रधान हो। इन एकांकियों में जटिल लक्षणों की चरितार्थता भले ही हो जाती थी किन्तु सच्चे जीवन की अभिव्यक्ति न हो पाती थी। अल्पकाय एकांकी मे संधि, विष्कंभक, वृत्ति, नान्दी, मंगलाचरण आदि की अस्वाभाविक जटिलताओं तथा कृत्रिमता का नितान्त अभाव होता है।

प्राचीन संस्कृत एकांकी और आधुनिक एकांकी

किसी मार्मिक घटना को एक ही अंक मे थोड़े से समय में अधिक से अधिक उत्कृष्ट और प्रभावशाली रूप देना ही एकांकीकार की कला है। एकांकी मे अनावश्यक विस्तार आदि के लिए बिलकुल स्थान नहीं। थोड़े में सब कुछ कह जाना ही उसकी कला है। जो काम बड़ा नाटक अपने इतने बड़े विस्तार के कारण कर सकता है वही काम एकांकी अपनी लघु सीमा के भीतर हीं दिखाने की क्षमता रखता है। बड़ा नाटक यदि उस बड़े बादल या बादल समूह के समान है जो समुद्र की भाप से धीरे-धीरे निर्मित हो कर, धीरे-धीरे घिर कर,

एकांकी कला

उमड़ कर देर में बरसता है, तो एकांकी उस घनखंड के समान है जो थोड़े ही समय मे देखते-देखते अपने लघु आकार मे अधिक से अधिक वृष्टिशक्ति को घनीभूत करके बरस पड़ता है।

एकांकी का विषय जीवन का एक चित्र, एक रेखा, एक बिन्दु, एक झाँकी, एक अनुभव, एक परिस्थिति, एक पटल होता है। जीवन का एक दिन, एक घड़ी, एक क्षण भी उसके लिए पर्याप्त है। विस्तृत और व्यापक जीवन के प्रांगण मे एकांकीकार किसी एक लघु घटना को चुन कर निकाल लेता है और उसी एक घटना मे अपनी सारी कला और प्रतिभा को केन्द्रीभूत कर देता है। वह अपनी सारी शक्ति, अपनी सारी कल्पना, संपूर्ण कोमलता, पूरी कुशलता—सब कुछ उसी एक घटना मे पुञ्जीभूत कर देता है। यही कारण है कि एकांकी हमे इतनी तीव्रता और मार्मिकता से प्रभावित करता है क्योंकि कलाकार उसमे प्राण फूँक देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने अपने सम्पूर्ण अनुभव, प्रतिभा और कौशल के वसंत को एकांकी की एक कली मे सीमित कर दिया हो। इसी कारण एक सफल एकांकी नाटक साधारण नाटक से अधिक प्रभावशाली होता है।

कथावस्तु

एकांकी के कथानक मे जीवन की एक छोटी सी छोटी किन्तु मार्मिक घटना होती है। इसके चयन मे ही लेखक की कुशलता है; सफलता है। इसी घटना मे कुशल नाटककार कौतूहल का वह तीव्र वेग भर देता है जिसमें घटना के प्रवाह के लिए किसी अप्रधान प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती। कथावस्तु एक सीधी स्पष्ट रेखा के समान आगे बढ़ती

जाती है, उसके लिए वक्र होने, इधर उधर मुड़ने का न तो समय है न स्थान ही। कथावस्तु का विकास बिलकुल ही स्वाभाविक ढंग से होता है। उसमे वर्णनात्मक की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है। एकांकी के विषय मे विस्तार के लिए अवकाश ही नहीं। एकांकी का केवल एक विषय होता है, सहायक विषयो के लिए उसमें बिलकुल स्थान नही है।

घटना का कोई भी भाग उखडा हुआ या असम्बद्ध सा नहीं प्रतीत होता है। घटना का एक-एक अंग शरीर के एक-एक अंग के समान होता है। चरम सीमा तक पहुँचते-पहुँचते घटना घटा के समान घनीभूत हो जाती है। पाठक का कुतूहल बढ़ने लगता है, वह आगे का रहस्य जानने के लिए व्याकुल सा हो उठता है। कथावस्तु जब चरम सीमा से अवरोहण करती है तब भी उसमे गति और प्रवाह होता है। यद्यपि बहुत से एकांकीकार अपनी रचना मे 'कुतूहल' का प्रयोग नही करते फिर भी उनके नाटक अच्छे हैं, किन्तु 'कुतूहल' के प्रयोग के बिना एकांकी की कथावस्तु मे शैथिल्य आ जाने का भय है।

चरित्र-चित्रण का कलात्मक अंग आंतरिक संघर्ष है। हमारे मनःक्षेत्र में छिपी हुई सूक्ष्म भावनाओ के द्वन्द्व किस प्रकार चला करते हैं—इसका सुन्दर उद्‌घाटन जब कोई कुशल कलाकार करता है तो हम उस वर्णन को पढ़ कर मुग्ध हो जाते हैं। आंतरिक संघर्षों का प्रभाव आंगिक चेष्टाओं पर भी पड़ता है। नाटककार का ध्यान इन सब विशेषताओं पर रहता है। जीवन का वास्तविक विशद स्वरूप आन्तरिक

आन्तरिक संघर्ष

संघर्षों मे ही मिलता है—चाहे वह विषादमय हो या मंगलमय। दो विरोधी प्रवृत्तियो के द्वन्द्व मे मनुष्य की इच्छाशक्ति का उचित प्रयोग ही शक्तिशाली चरित्र का द्योतक है। सत्प्रवृत्ति की विजय इच्छाशक्ति से ही होती है। एकांकी मे यद्यपि अधिक स्थान तो नहीं होता किन्तु किसी एक पात्र के आन्तरिक द्वन्द्व को उत्कृष्टता के साथ दिखाया जा सकता है। मानसिक प्रवृत्तियो के संघर्ष की एक झाँकी दिखा कर नाटककार हमे जीवन के मनोवैज्ञानिक सत्य का दर्शन करा देता है।

एकांकी मे पात्रो की संख्या अधिक के अधिक चार या पाँच होनी चाहिए। इनमे से भी प्रधान पात्र दो या एक ही हो सकते है।

पात्र

क्योंकि दो या एक से अधिक पात्रो के चरित्र की मार्मिकता के प्रदर्शन के लिए एकांकी मे स्थान नही रहता। पात्रो का नाटकीय घटना से विशेष सम्बन्ध होना चाहिए। घटना की गतिविधि मे प्रत्येक पात्र का समुचित सहयोग हो। केवल मनोरंजन के लिए अनावश्यक पात्रो के लिए कोई स्थान नही है।

नाटककार का एक मात्र अस्त्र संवाद है जिससे वह अपने लक्ष्य को भेदता है। कहानी या उपन्यास मे स्वयं कलाकार भी

सवाद

बोलता है। किन्तु नाटक का कलाकार मौन रहता है, केवल पात्र ही बोलते है। फिर भी नाटकीय संवाद मे पात्र जो कुछ मुँह से कहते हैं उसका शारीरिक अभिनय भी करते चलते हैं। एकांकी के संभाषण मे नपे-तुले अर्थ से भरे हुए शब्दो का प्रयोग होता है। व्यर्थ के विशेषणों और प्रलाप

के लिए कोई स्थान नहीं। संवाद रोचक, तर्कपूर्ण तथा प्रभावशाली होता है। गति, तीव्रता और प्रवाह ही संवाद की सफलता है। लंबा व्याख्यान प्रायः एकांकी की गति को मंद कर देता है। ऐसे व्याख्यानो के आयोजन का अवसर साधारण बड़े नाटक मे मिल सकना है। एकांकी मे न उसके लिए स्थान ही है न अवसर ही। एकांकी के एक एक वाक्य और एक एक शब्द श्वास की तरह आवश्यक रहते हैं। यहाँ प्रमुख एकांकी नाटककारों की शैली की समालोचना करना अभीष्ट है।

उपेन्द्रनाथ अश्क—'अधिकार का रक्षक'

आपने सुन्दर कहानियो की रचना द्वारा हिन्दी साहित्य मे सम्मान अर्जित किया है, इधर कुछ दिनो से आपने एकांकी की श्रीवृद्धि करना प्रारम्भ किया है। 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पापी', 'अधिकार का रक्षक' आपकी प्रशंसनीय रचनाएँ हैं।

हमारे सामाजिक जीवन के अंतराल मे पहुँच कर आप उसकी कमजोरी की अभिव्यक्ति बड़े ही मार्मिक और वेदना-पूर्ण ढंग से करते हैं। कहीं-कहीं आंतरिक संघर्ष का चित्रण भी आपकी रचनाओं में मिलता है। समाज के कारुणिक और व्यंग्यात्मक दोनों चित्रों के खींचने मे आप सफल हुए हैं।

प्रस्तुत एकांकी 'अधिकार का रक्षक' में लेखक ने हमारे आधुनिक सामाजिक जीवन का एक व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचा है। समाज सुधारक नाम-धारी, स्वार्थी, पद-लोलुप और धोखेबाज व्यक्तियों के विकृत जीवन को हमारे सम्मुख रक्खा गया है। जो व्यक्ति अपने

बाह्य और सामाजिक जीवन में दलित और पीड़ित मानवता के अधिकार का रक्षक है, वही अपने परिवारिक और व्यक्तिगत जीवन में उन्हीं अधिकारों का तिरस्कार करता है। असेंबली के चुनाव मे अधिक वोट पाने की आशा में एक उम्मीदवार किस प्रकार जनता को झूठी प्रतिज्ञाओं द्वारा आकर्षित करता है, उनके अधिकारो की रक्षा की बीडा उठाता है—इसी का नग्न चित्र खींच कर लेखक ने समाज के उत्थान का आदर्श सम्मुख रखा है।

मि० सेठ इस नाटक के नायक हैं। उनके बाह्य और अन्त-र्जीवन का स्वाभाविक चित्रण है। बाह्य जीवन मे वे बच्चो के लालन-पालन उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनके स्वास्थ्य, उनके डरपोक और भीरु स्वभाव मे सुधार की घोषणा करते है। व्यक्तिगत जीवन वे अपने पुत्र बलराज के साथ निर्दयता का व्यवहार करते हैं। पाठशालाओ में शरीरिक दंड का विरोध करते हैं और घर मे बच्चे को नित्य पीटते हैं। उसे अपने पास फटकने तक नही देते। वे बाहर निरीह, अत्याचार-पीड़ित नौकरों के प्रति किये जाने वाले अन्याय को जड़ से उखाड़ने के लिए 'नौकर यूनियन' की स्थापना करते हैं और घर मे नौकर और रसोइये पर स्वयं अत्याचार करते हैं, उनका तीन-तीन महीने का वेतन नही देते। झूठ बोलना और धोखेबाजी से काम चलाना उनकी दिनचर्य्या है। परमार्थ के आवरण मे ही उनका उद्देश्य रहता है। विद्यार्थियों के प्रति सहानु-भूति दिखाते हुए वे अपने संपादक से कहते हैं 'आप इनका बयान छाप दीजियेगा'। अलग संपादक से विद्यार्थियों के चले जाने पर

कहते हैं कि 'इनका बयान हरगिज न छापना'। यही है हमारा कपटपूर्ण सामाजिक जीवन। घर मे अपनी स्त्री को पीटने और उस पर अत्याचार करने कर भी बाहर घोषणा करते हैं 'महिलाओ के अधिकारो का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारो मे कही नज़र न आएगा'। ऐसे ही लोग हमारा प्रतिनिधित्व करने का दम भरते हैं—'अन्तः शैवा बहिः शाक्ताः सभामध्ये च वैष्णवाः।'

लेखक ने कहीं कहीं मि० सेठ के व्यवहार तथा नौकर की बात मे विनोद भी उपस्थित किया है। संपादक का चित्रण जो कुछ है स्वाभाविक है।

भाषा पात्रो के अनुकूल स्वाभाविक और मुहावरेदार है। उर्दू के नित्य के बोलचाल के शब्दो का प्रयोग भाषा की व्यावहारिकता को बढ़ाता है।

कथोपकथन मनोरञ्जक और सुन्दर है।

श्री विष्णु—'माँ-बाप'

एकांकी साहित्य में आपका प्रयत्न श्लाघनीय है। भावनाओं के द्वन्द्व आप बड़ी कुशलता से दिखाने की क्षमता रखते हैं। कथानकों का चयन आप अच्छा करते हैं। आपके नाटको में जीवन की विवेचना सुन्दर और मार्मिक होती है।

प्रस्तुत एकांकी 'माँ-बाप' मे लेखक ने माँ-बाप के वात्सल्य और पुत्रप्रेम का आदर्श उपस्थित किया है। साधारण स्थिति का पिता अपना सर्वस्व लगा कर पुत्र को शिक्षित बनाता है। उसी

सुयोग्य पुत्र को देश या जाति के सेवक के रूप मे देख कर वृद्ध पिता को इतना संतोष और आह्लाद होता है कि वह अपने पुत्र की मृत्यु पर भी रोना नहीं चाहता क्योंकि वह वीरपुत्र का वीर बाप है; फिर भी पुत्र-शोक मे आँसू आ ही जा । इन्हीं भावनाओ का बड़ा विशद चित्रण लेखक ने किया है।

नाटक के प्रारंभ में हम अशोक के माँ-बाप को उद्विग्न सा देखते हैं। बहुत दिनों के बाद छुट्टी में अशोक आनेवाला है। रात्रि मे थोडा सा शब्द होने पर भी अशोक की माँ चौंक उठती है कि अशोक आ गया। मातृ-हृदय का स्वाभाविक चित्रण है। दामोदरस्वरूप (अशोक के पिता) प्राचीन आदर्शों के अनुसार पुत्र का वर्ष-फल और जन्म-पत्री बराबर ज्योतिषियों से दिखाते हैं।, इसी से पता लगता है कि पुत्र के हित की चिन्ता पिता को कितनी अधिक है। अनिता के स्वप्न मे लेखक ने भावी घटना की सूचना बड़े कौशल के साथ दी है। माँ, बाप और बहन तीनों की व्याकुलता और उत्सुकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। कलावती का हृदय स्वभावतः दामोदरस्वरूप के हृदय से कोमल है। हिन्दू-मुसलिम लड़ाई में अशोक की सेवा और वीरता सुन कर दोनो अश्रुओ को रोकने की चेष्टा करते हैं क्योकि उनका पुत्र अपने त्याग और उत्सर्ग के कारण देश और जाति के लिए रत्न है। मातृ-हृदय इस लड़ाई में अशोक के क्षेम और कुशल के लिए जितना चिन्तित और दुखी है, उतना उसके सम्मान के लिए प्रसन्न नहीं है।

अन्तिम दृश्य में अशोक घायल लेटा हुआ है। माँ-बाप का

श्वास अशोक के श्वास के साथ चल रहा है। देश के प्रसिद्ध नेता अमृतराम अशोक की प्रशंसा करते हैं—'एक दिव्यात्मा पृथ्वी पर उतरी थी, आज लौट गई।' दामोदरस्वरूप अपने वीर पुत्र के वीर बाप बनने की चेष्टा मे अन्तिम कारुणिक दृश्य के समय भी अश्रु रोकना चाहते हैं। यह दो भावनाओं का संघर्ष बड़ी मार्मिकता के साथ दिखाया गया है। एक ओर धैर्य्य और दृढ़ता है, दूसरी ओर पुत्र-प्रेम और शोक है। दामोदरस्वरूप कलावती को भी रोने से रोकते हैं। स्वयं प्रसन्न होने की चेष्टा करते हैं किन्तु अन्त मे आँसू की बूँद आँख के कोने से ढलक ही जाती है, जिसे वह कुहनी से पोंछ लेते हैं—यही पुत्र-प्रेम की विजय है।

भाषा सरल भावोपयुक्त है। संभाषण सुन्दर है।

सेठ गोविन्ददास—'मानव-मन'

सेठ गोविन्द दास के व्यक्तित्व मे राजनीति और साहित्य का सुन्दर सम्मिश्रण है। एकान्त जेल-जीवन मे ही इनके अधिकतर नाटको की सृष्टि हुई है। आपने बड़े नाटक तथा एकांकी दोनों लिखे हैं। आपके एकांकी नाटकों का विषय अधिकतर सामाजिक होता है। कथानको का आधार या तो आधुनिक सामाजिक जीवन की कोई समस्या होती है या वर्तमान समाज की किसी विशेष प्रवृत्ति की ओर संकेत होता है। सिद्धान्त और समस्या की प्रधानता के कारण इनके कथानकों मे 'कुतूहल' का प्रायः अभाव-सा रहता है। पात्रो के चरित्र की मार्मिकता भी प्रायः विचार-पुष्टि ही के लिए दिखाई गई है। इनके एकांकी पात्र-

बहुलता के दोष से सर्वथा मुक्त हैं, यद्यपि नाटकीय संकेत लंबा होता है। कहीं-कहीं आन्तरिक संघर्ष भी सुन्दर बन पड़ा है।

आधुनिक अंग्रेजी एकांकी लेखको का इन पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इनके मुख्य नाटक हैं 'विश्व प्रेम', 'कर्तव्य', 'सेवा-पथ', 'कुलीनता', 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य', 'स्पर्द्धा' और 'मानव-मन'। 'मानव-मन' नाटक में शीर्षक के अनुसार लेखक ने मनुष्य-हृदय की विचित्र प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है। मन का मूल-भूत स्वाभाविक प्रवाह आदर्श की कठोर चट्टान से टकराता है। दोनो मे संघर्ष होता है, अन्त मे मन का तीव्र स्वाभाविक प्रवाह आदर्श की चट्टान छेद कर अपना रास्ता निकाल ही लेता है। आदर्श के ऊपर मूल-भूत (Instinct) प्रवृत्ति की विजय होती है। क्योंकि आदर्श समाज द्वारा निर्मित बाह्य सिद्धान्त है, और मनःप्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से हमारे जन्म के साथ ही मन मे बद्धमूल रहती है। आदर्श के अंकुश द्वारा हम मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों (Instincts) का नियंत्रण कर किसी कष्ट को सहन कर सकते हैं, किन्तु लेखक के शब्दों मे सहनशक्ति सीमा-रहित नहीं है। बरदाश्त करने की भी हद होती है।

नाटक की नायिका पद्मा पतिप्राणा नारी है। उसका आदर्श है अपने प्रिय पति के लिए अपने सर्वस्व का उत्सर्ग। उसकी भाभी अपने पति बृजमोहन की बीमारी मे दो वर्ष तक सेवा और तपस्या का कठिन जीवन व्यतीत करती है, किन्तु क्षय रोग की असाध्यता से उसका धैर्य्य टूट जाता है, उसकी सहन-शक्ति शिथिल हो जाती है। और उसके बाद मन की स्वाभा-

विक प्रवृत्ति के अनुसार उसके उल्लास और क्रीड़ा की दिन-चर्य्या पुनः प्रारंभ हो जाती है। पति की बीमारी ही में भाभी के इस परिवर्तित व्यवहार पर पद्मा को आश्चर्य होता है। किन्तु भारती को इन बातों से अचंभा नहीं होता। वह पद्मा से कहती है कि यह मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पद्मा अपने आदर्श को मन की प्रवृत्ति से ऊँचा समझती है। वह इस सिद्धान्त की पुजारिन है की पति चाहे किसी भी परिस्थिति मे हो पत्नी अपने सारे सुखो को तिलांजलि दे कर अपने को पति मे विलीन कर दे। इस आदर्श का संघर्ष होता है स्वाभाविक मनःप्रवृत्ति से। वह प्रवृत्ति यह है कि जब किसी असीम और अनन्त कष्ट को सहते-सहते (चाहे वह अपने प्रिय के लिए ही हो) मन ऊब सा जाता है, धैर्य्य विचलित हो जाता है, तब मन उस कष्ट के प्रति उदासीन हो कर पुनः सुख की खोज मे दौड़ता है। पद्मा अपने पति की बीमारी मे अपने आदर्श का पालन साधना और तपस्या के साथ करती है। खाना-पीना, सोना, पूजा-पाठ सब का परित्याग कर वह पति की निरन्तर सेवा में दो साल तक लीन रहती है। उसका वेश मलिन, मुख उदास रहता है। दो वर्ष बाद जब उसका पति उसे श्रीनाथद्वारे जाने को कहता है तो पद्मा पति को छोड़ कर जाना नहीं चाहती। अन्त में श्रीनाथजी के आशीर्वाद से पति के स्वस्थ होने की भावना ले वह पति की आज्ञा से जाने को उद्यत होती है। जाते समय उसका तपस्विनी सा वेश नहीं है, जैसा पति की बीमारी में था। वरन् वह रेशमी साड़ी, ब्लाउज और रत्न-जटित आभूषण धारण कर लेती है। अन्त में लेखक

भारती के मुँह से मानव-मन की प्रवृत्ति बता कर नाटक बड़े सुन्दर ढंग से समाप्त करता है। बीमार के साथ बिना किसी बीमारी के कोई बहुत दिन तक बीमार से भी बदतर हालत मे नही रह सकता। मृत के साथ जीवित अपने को मृत नहीं समझ सकता। आदर्श की बात दूसरी है, किन्तु मानव'''मानव-मन''''' यह मानव-मन'''।

भाषा पात्रो के अनुकूल सरल और स्वाभाविक है। कृष्ण-वल्लभ के संभाषण मे कही-कही काव्य की छटा भी है। सभाषण उपयुक्त मार्मिक और सुन्दर हैं।

उदयशंकर भट्ट—'दस हज़ार'

काव्य और नाटक दोनो क्षेत्रो मे भट्ट जी हिन्दी-साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं। बड़े नाटकों में 'दाहर' 'अम्बा', 'विक्रमादित्य', 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगंधा', और 'सगर विजय' आपकी सफल कृतियाँ हैं। आपने कुछ अच्छे एकांकी नाटक भी लिखे है। इनके नाटक प्रायः दुःखपूर्ण और मनोवैज्ञानिक होते है।

'दस हज़ार' सुन्दर रचना है। विशाखाराम के हृदय मे दो प्रधान मानसिक प्रवृत्तियो का मनोवैज्ञानिक संघर्ष बडी कुशलता के साथ दिखाया गया है। पुत्र-प्रेम और धन-लोभ इन दोनों भावनाओ मे द्वन्द्व का सुन्दर विकास दिखाते हुए लेखक ने धन-लोभ की विजय पुत्र-प्रेम पर कराई है। मनोविज्ञान के सूक्ष्म नियमो के अनुसार वात्सल्य की मूल-भूत प्रवृत्ति धनसंचय की

प्रवृत्ति से अत्यन्त बलवती है। यद्यपि इस स्वाभाविक नियम पर ध्यान देने से इस नाटक मे कुछ अस्वाभाविकता की झलक आने लगती है, किन्तु हमारे समाज मे 'शाईलाक' जैसे निर्दय कंजूसो की कमी भी नही है, जिन्हे धन प्राण से भी प्रिय होता है। नाटक के अन्त मे सुन्दर की माँ पति की मर्यादा की रक्षा के लिए अपने पुत्र से धन-लोभ के सम्बन्ध मे कुछ नही कहती। केवल यही कहती है कि 'इन्हे नीद आ गई है बेटा, आओ चले। नारी-चरित्र की सुन्दर झलक है!

कथानक मे 'कुतूहल' का अभाव है फिर भी अन्तर्द्वन्द्व की शृंखला पाठक के मन को बरबस आगे खींचती चलती है। संभाषण मे तीव्रता और गति है। 'लगैहै' 'कहूँहूँ' आदि के प्रयोगों द्वारा भाषा मे स्वाभाविकता आ गई है। भाषा भावो और पात्रों के अनुकूल होने के साथ ही साथ मनोवेगों को सरलता से स्पष्ट करती चली गई है।

भगवतीचरण वर्मा—'मैं और केवल मैं'

कविता, कहानी और उपन्यास लिखने मे आपको सफलता और ख्याति दोनों प्राप्त हो चुकी हैं। 'मधुकण', 'प्रेम संगीत', 'एक दिन' आदि आपकी काव्य पुस्तकें हैं। 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' अच्छे उपन्यास हैं। 'इंस्टालमेंट' नामक आपका सुन्दर कहानी-संग्रह है।

इधर एकांकी के क्षेत्र मे भी आपका प्रयत्न सराहनीय हुआ है। आपने बहुत थोड़े एकांकी लिखे हैं; 'सबसे बड़ा आदमी' और

'मैं और केवल मैं' आपके प्रसिद्ध एकांकी है। दोनो ही में आपका संकेत जीवन की कठोर वास्तविकता की ओर है। आदर्श और यथार्थ का संघर्ष आप कुशलता-पूर्वक दिखलाते हैं।

प्रस्तुत एकाकी—'मैं और केवल मैं'—मे लेखक ने, जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, इस कल्पित स्वार्थी संसार का चित्र खीचा है। सब लोग अपने निजी सुख और सुविधा के पाश से जकड़े हुए है। किसी को दूसरे की दुःख-कहानी सुनने का अवकाश नही। सहानुभूति का प्रदर्शन भी मौखिक और बनावटी होता है। एक आदर्शवादी जब वास्तविकता की इस कठोर शिला से टकराता है, तब उसे प्रकट होता है कि स्वप्न और जागरण मे क्या अंतर है। पात्रो मे खन्ना स्वार्थी और निर्दय है, रामेश्वर भावुक और परोपकारी है। उसके हृदय मे दुखी लोगो के प्रति सहानुभूति है। वह पर-हित के लिए तत्पर रहता है। किसी का अनिष्ट किसी प्रकार नही चाहता। उसका सहकारी कृष्णचन्द्र भी कठोर-हृदय व्यक्ति है। रामेश्वर की करुण दशा पर वह ध्यान तक नहीं देता। जब रामेश्वर मानवता का नाम लेता है, तो देवनारायण कहता है कि 'मानवता का नाम है एक दूसरे को खा जाना, स्वयं सुखी बनने के लिए दूसरे को दुखी बनाना।'

परमानन्द के नौकरी से 'डिसमिस' किये जाने पर रामेश्वर परमानन्द के दुःख से दुखी हो उठता है, यद्यपि स्वयं उसके ऊपर विपत्तियो का वज्र गिरा हुआ है। खन्ना के अन्याय और अत्या-चार तथा परमानन्द के दुःख का बड़ा तीव्र प्रभाव उसके हृदय

पर पड़ता है। आवेश मे आ कर रामेश्वर खन्ना का गला दबाता है। जो आदर्शवादी रामेश्वर पहले कहता था मैं खन्ना के खिलाफ कोई काम न करूँगा, (खन्ना के खिलाफ ही क्यो किसी के खिलाफ नही) वही रामेश्वर जब स्वार्थ और अन्याय की पराकाष्ठा को देखता है तो स्वयं निर्दय और कठोर बन कर खन्ना का प्राण ले लेता है। परिणाम यही निकलता है कि आधुनिक भौतिक जीवन की स्वार्थ, निर्दयता और अन्याय की पाषाणभूमि पर आदर्शवाद पल्लवित नहीं हो सकता। उसके लिए कोई स्वर्गीय कोमल-भूमि चाहिए।

यद्यपि कथानक मे 'कुतूहल' का अभाव है, फिर भी कथावस्तु मे शैथिल्य नही है।

भाषा प्रवाहयुक्त, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार । कहीं-कहीं आवेशपूर्ण संभाषण मे कवित्व की छाया भी है।

डा० रामकुमार वर्मा—'परीक्षा'

वर्मा जी जैसे सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभा के लेखक हिन्दी साहित्य मे इने गिने हैं। काव्य, आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र में आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

आधुनिक ढंग के उत्कृष्ट एकाकी नाटक के जन्मदाता होने का श्रेय आप ही को है। एकांकी नाट्य-साहित्य को संस्कृत की कृत्रिम रूढियों से मुक्त करके उसे पाश्चात्य एकांकी के समकक्ष रखने का प्रथम प्रयास आप ही ने किया। आपके पूर्व 'प्रसाद' ने 'एक घूँट' और 'सज्जन' नामक एकांकी अवश्य लिखे थे, किन्तु

इन नाटको मे नान्दी और सूत्रधार आदि का समावेश है।

रामकुमार जी ने अपने कथानको का चयन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है। आपके एकांकी सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक हैं। रचना की उत्कृष्टता के साथ ही साथ इनके नाटकों की संख्या भी अन्य एकांकीकारो की रचनाओ से बहुत अधिक है। इनके प्रायः सब नाटक अभिनय की कसौटी पर कसे जा चुके है और सफल उतरे है। 'बादल की मृत्यु', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'नही का रहस्य', 'एक्ट्रेस', 'चंपक', 'दस मिनट', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'एक तोला अफीम की कीमत', 'रजनी की रात', 'स्त्री और पुरुष' 'कोयले की आँच', 'परीक्षा' आदि इनकी उच्चकोटि की रचनाएँ है। इनमे से कोई भी एकांकी पश्चिम के सफल एकाकी की टक्कर मे रक्खा जा सकता है। रचना के परिणाम और उत्कृष्टता दोनो के आधार पर रामकुमार जी को हम एकांकी-सम्राट् कह सकते हैं। बड़े नाटक के क्षेत्र मे जो स्थान 'प्रसाद' जी का है, उपन्यास के क्षेत्र मे जो स्थान प्रेमचन्द जी का है, एकांकी साहित्य मे वही उच्च स्थान रामकुमार जी का है।

विश्वविद्यालय मे एक उत्तरदायित्व के पद की आवश्यकताओ की समुचित पूर्त्ति करते हुए, काव्य और आलोचना साहित्य की श्रीवृद्धि करते हुए वर्मा जी एकांकी नाटकों के निर्माण मे भी रत रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे एकांकी-साहित्य के शिशु को बहुत थोड़े समय मे विकसित और प्रौढ रूप मे देखना चाहते हो।

स्वयं एक आलोचक होने के नाते रामकुमार जी अपने नाटको को एकांकी के आवश्यक गुणो से विभूषित कर देते है। इनके

नाटको की प्रधान विशेषताएँ है—कथानक मे 'कुतूहल' का सुन्दर सृजन, और चरित्र-चित्रण मे आंतरिक संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। नाटक के अतर्द्वन्द्व को आप अधिक महत्त्व देते हैं। सभाषण की लडी मे घटनाएँ मोती के समान गुँथी रहती है जिनका एक-एक शब्द अपना निश्चित स्थान और मूल्य रखता है।

आपके नाटक परिस्थिति और काल की परिधि मे नहीं बाँधे जा सकते। इनमे मानव-जीवन का अनन्त दर्शन है। मानव-जीवन को संचालित करनेवाले वैज्ञानिक तथ्यो के पहचानने की आप मे अद्भुत क्षमता है। शैली मे आपका व्यक्तित्व स्वयं बोलता है। एकाकी की टेकनीक को आप पूर्णतया समझते हैं। चरम सीमा या 'क्लाइमैक्स' का जैसा सुन्दर रूप आपके नाटको मे मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवि होने के नाते आप भाषा को काव्य की कोमलता से सॅवारते चलते हैं। आपकी रचनाएँ सर्वांग सुन्दर होती हैं। 'परीक्षा' आपकी अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है। उस नाटक मे भारतीय नारी के आदर्शों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा है। पति-परायणा सती हिन्दू-नारी को लेखक मनोविज्ञान की कसौटी पर कसता है। विदेशी प्रभाव के कारण आधुनिक उच्च-शिक्षा-प्राप्त स्त्रियों का जीवन शिष्टाचार, कृत्रिमता और विलासिता के रंगीन वातावरण से ढक गया है । हमें भ्रम होने लगता है कि ऐसे वातावरण में श्वास लेने वाली रमणी मन, वचन और कर्म से कदाचित् ही पति-व्रत और सतीत्व के आदर्शों का पालन करती हो। आधुनिक आडम्बर-पूर्ण जीवन मे ऐसा प्रतीत होता है, लेखक वाचा और कर्मणा में कम विश्वास करता है। इसीलिए

उसने नारी के 'मनस्' की परीक्षा का आयोजन किया।

नाटक की नायिका रत्ना के सम्मुख यह परीक्षा यकायक आकस्मिक ढंग से आती है—परीक्षा की वही अग्नि जिसके भय से कॉप कर सोना तरल हो जाता है। बड़ी ही मनोवैज्ञानिक कुशलता से लेखक ने इस परीक्षा की रूप-रेखा खींची है। इसमें उत्तीर्ण हो कर रत्ना भारत की रत्ना बन कर यह प्रमाणित कर देती है कि विदेशी सभ्यता से रंजित होने पर भी आधुनिक भारतीय नारी-जीवन के अंतराल मे पतिव्रत और सतीत्व का दिव्य आलोक है।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक डा० रुद्र के सम्मुख रत्ना एक गूढ़ पहेली बन कर आती है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले कर अब तक नारी-जीवन एक रहस्य बना हुआ है। इसी रहस्य के उद्घाटन के लिए डा० रुद्र की प्रयोगशाला मे एक अद्भुत प्रयोग होता है। रहस्य यह है कि रत्ना बीसवीं शताब्दी की बीस वर्ष की ग्रेजुएट युवती है। ५० वर्ष की आयु वाले प्रो० केदार के साथ उसका मनोवांछित विवाह होता है। वह पति को आराध्यदेव समझती है, नित्य पति की सेवा के लिए तत्पर रहती है, सब कार्य स्वयं अपने हाथो से करती है। इस व्यवहार से दोनों विद्वानो को आश्चर्य होता है। प्रो० केदार डा० रुद्र से कहते हैं 'मालूम होता है वे मुझ पर दया करती है, मुझे अपने काम मे भुलाना चाहती हैं। डाक्टर, तुम परीक्षा करके देख लो वे जो कुछ हैं, कहाँ तक है, कितनी गहरी हैं ?' आजकल की अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त युवतियो को समाज कैसी संदेहात्मक दृष्टि से देखता है, इसे लेखक ने

केदार की 'शङ्का' मे अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रकट किया है। इस शङ्का के समाधान के लिए संसार-प्रसिद्ध महान् वैज्ञानिक डा० रुद्र अपने यंत्र ठीक करते हैं—यह दृश्य बड़ा ही मार्मिक और कुतूहलपूर्ण है।

डा० रुद्र के व्यक्तित्व को लेखक ने समुद्र के समान गंभीर और पर्वत के समान उच्च बनाया है। 'अमर यौवन रस, और रोने को हॅसी मे बदलना' आदि वैज्ञानिक प्रयोगो के वर्णन मे जहाँ, लेखक की बहुज्ञता का परिचय मिलता है, वहाँ, डा० रुद्र की असाधारण प्रतिभा का भी। रुद्र की महानता और ख्याति देश-विदेश से आये प्रशंसा-पात्रों द्वारा लेखक ने बड़ी कुशलता से व्यक्त की है। डा० रुद्र का चित्रण मनोविज्ञानवेत्ता के रूप मे बड़ा स्वाभाविक हुआ है। केदार के विवाह की बात सुन कर डा० रुद्र एक अन्वेषक की भाँति कारण-कार्य का सम्बन्ध ढूँढने लगते है, और रत्ना की शिक्षा, अवस्था, पारिवारिक जीवन, व्यवहार, स्वभाव आदि की गंभीर विवेचना के बाद अपना निष्कर्ष केदार को सुनाते हैं—'वे प्रेम के बजाय तुम्हारा आदर ज्यादा करती हैं।'

रत्ना का स्वभाव सरल, गंभीर, अध्ययनशील है। वह पति ही को सर्वस्व समझने वाली देवी है। पति यद्यपि पचास वर्ष का है, किन्तु उसकी उम्र का ध्यान न कर वह उसके स्वभाव और योग्यता का ही सम्मान करती है। रत्ना का जीवन पति के दुख-सुख आशा-निराशाओ की ही परिधि में घिरा हुआ है, वह बाहर के क्रीड़ा और उल्लासपूर्ण जीवन से अपने को अलग

रखती है। वृद्ध पति के जवान बनने की बात सुन कर रत्ना उछल नहीं पड़ती। उसके सम्मुख उम्र का मूल्य कुछ नही। पति वृद्ध हो या जवान रत्ना के लिए ईश्वर है। केदार के जवान बनने के विषय मे जब डा० रुद्र रत्ना की राय पूछते हैं तो कितने संकोच के साथ कहती है "मैं क्या कहूँ"। रत्ना को यह उतावली नही है कि रस पी कर उसका पति जवान हो जाय। वह डरती है कि रस कहीं नुकसान न पहुँचावे। रत्ना की घबराहट का कितना सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्र लेखक ने वहाँ उपस्थित किया है जब वह रुद्र से कहती है कि उसी रस को कुछ बदल करके दीजिए ताकि वे फिर पहले जैसे हो जायँ। डा० रुद्र जब रत्ना के सम्मुख यह मनोवैज्ञानिक तथ्य रखते है कि यदि रत्ना भी बूढ़ी हो जाय तो वृद्ध केदार को शांति मिलेगी तब रत्ना तुरन्त जीवन के महान् उत्सर्ग के लिए तैयार हो जाती है। मानव के लिए यौवन से बढ़ कर सुन्दर कोई चीज नही हो सकती। स्त्री के लिए तो यौवन और भी प्रिय और बहुमूल्य है। इसी भरे हुए यौवन को रत्ना पति की शांति के लिए ठुकरा देती है, और स्वयं वृद्धा बनने का आग्रह रुद्र से करने लगती है। इसी प्रकार हिन्दू सतियाँ अपने पति के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान कर सकती हैं।

इतनी गंभीर और कठिन परीक्षा का अन्त लेखक ने बड़े विनोदात्मक ढंग से किया। नाटक के बीच मे जो दुःख और निराशा का बादल घिरने लगता है, अन्त में वह सुख और आशा की वायु से हट जाता है। इस प्रकार इस एकांकी मे ट्रैजेडी

और कामडी दोनो का मधुर मिश्रण है। कहीं-कहीं हास्य भी सुन्दर बन पड़ा है।

संवाद मे स्रोत की भाँति तीव्रता और प्रवाह है। कुतूहल का चुम्बक पाठक के मन को बरबस आगे खींचता जाता है। 'सस-पेन्स' इतना अधिक है कि धैर्य्य टूटने लगता है, हम यह जानने के लिए उत्सुक हो उठते हैं कि आगे क्या होगा। जब लेखक रहस्य को खोल देता है तो नाटक की गति कुछ शिथिल अवश्य हो जाती है, किन्तु थोड़ी ही देर बाद नाटक समाप्त हो जाता है।

भाषा स्वाभाविक, व्यावहारिक और सरल है। रुद्र के शब्दो मे नाटक की नायिका 'बहुत अच्छी हिन्दी बोलती है'। तकल्लुफ, इतमीनान आदि प्रचलित उर्दू शब्दो का प्रयोग स्वाभाविकता के लिए हुआ है। अंग्रेज़ी शब्दो का प्रयोग आवश्यकतानुसार हुआ है। नाटक मे काव्य की छाया का होना स्वाभाविक है, क्योंकि लेखक कवि होने के नाते भाषा की काव्यमय कोमलता मे विश्वास करता है।

नाटक अभिनयोपयोगी है। लेखक स्वयं अभिनेता हैं। इस-लिए रंगमंच की सुविधाओ का ध्यान रखते हैं। इसमें एक ही दृश्य है, एक ही स्थान है। किसी भी ड्राइंगरूम मे नाटक अभि-नीत हो सकता है!

(श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा एम० ए०, एल० टी०)

श्री कमलाकांत वर्मा—'सूर्योदय'

लेखक ने इस नाटक मे बड़े सुन्दर ढंग से दिखाया है कि कला का आदर्श कितना महान और उच्च है, उसका मूल्यांकन करना कला का अपमान करना है। सच्चा कलाकार पृथ्वी पर ईश्वर का रचनात्मक प्रतिनिधि है। ईश्वर के निर्माण किये हुए विश्व का जो पुनर्निर्माण कर सके वही कलाकार है। कला के इस दिव्य कठोर आदर्श का संघर्ष होता है, बलवती राजसत्ता से। अन्त मे लेखक ने बड़े मार्मिक ढंग से दिखाया है कि कला के उच्च आदर्श के सम्मुख राजसत्ता को नत-मस्तक होना पड़ता है और अपने को ईश्वर समझने वाला सम्राट् मनुष्य बन कर कलाकार से क्षमा-याचना करता है।

शशांक का व्यक्तित्व ऊँचे और महान् कलाकार का है। कला की साधना उसके लिये तपस्या है, वह उसका प्रदर्शन किसी के मनोविनोद के लिए नही करना चाहता। कला की आराधना को वह ईश्वरत्व की चरम आराधना समझता है। सम्राट् द्वारा राजसभा के रत्न निर्वाचित किये जाने के सम्मान को वह कला का अपमान समझता है। वह राजसभा मे अपने को बेचना नही चाहता, राजसभा स्वयं उसकी कला के पास आए। वह राजाज्ञा को अस्वीकार करता है क्योंकि वह केवल ईश्वराज्ञा मे विश्वास करता है। सम्राट् के सम्मुख भी कला का सच्चा उपासक निर्भय शशांक अहिसा और सत्य के बल पर राजा की अवज्ञा करता है और मृत्यु का आलिगन करके भी कला की मर्यादा को अक्षुण्ण रखना चाहता है। उत्पीड़न का वह सहर्ष स्वागत करता है।

निर्झरिणी की सृष्टि लेखक ने अत्यन्त मधुर और कोमल कल्पना के सहारे की है। वह भी कला की उपासिका है और कला के मूल्यांकन में विश्वास नही करती। किन्तु साथ ही वह यह भी जानती है कि अपूर्ण संसार मे कला की महत्ता उसकी ऊँचाई नहीं, दूसरो की आँखो से उसपर बरसाया जाने वाला मूल्य है। भारत की सर्वश्रेष्ठ नर्त्तकी के रूप मे सम्राट् की राजसभा का एक रत्न निर्वाचित किये जाने के सम्मान को वह सहसा नही ठुकरा सकी। पहले अस्वीकार करती है, फिर स्वीकार कर लेती है, यद्यपि वह जानती है कि रत्न बना कर ससार उसे खरीदना चाहता है। उसमे शशांक के समान वह गंभीरता और स्थिरता नही कि वह संसार के आँके हुए मूल्य का अपमान कर सके। राजसभा मे शशांक के महान आदर्श, प्रशांत, धीर और दृढ़ व्यक्तित्व को देख कर निर्झरिणी के हृदय मे शशांक के लिए असीम श्रद्धा उमड़ पड़ती है। राजसभा के सम्मुख रत्न के पद को ठुकराने वाले शशांक का आदर्श ही निर्झरिणी का आदर्श बन जाता है। वह पश्चात्ताप करती है और अपने पद का परित्याग करके रात्रि के अन्धकार मे शशांक से मिलने पर्वत शिखर पर जाती है। निर्झरिणी के हृदय मे रत्न पद स्वीकार करने का जो पश्चात्ताप है उसका मनोवैज्ञानिक वर्णन लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। नारी-हृदय का मार्मिक चित्र उस समय देखने को मिलता है जब निर्झरिणी शशांक के चरणो आत्म-समर्पण कर आँचल फैला कर उसके प्राणो की भीख माँगती है। किन्तु शशांक अपने सत्य पर अटल है। निर्झरिणी भी उसी मार्ग की

पथिक बनती है और मृत्यु का स्वागत करना चाहती है। शशांक के प्रति निर्झरिणी के आत्म-समर्पण और अपार श्रद्धाभाव के अन्तराल मे छिपी हुई प्रेम की सूक्ष्म रेखा को लेखक ने बड़े कौशल से दिखाया है। कला की मर्यादा के लिए दो दो कलाकारो मे बलिदान की भावना से सम्राट् क्षुब्ध हो उठते है और वे शशांक से क्षमा-याचना करते हैं। यही कला की राज-सत्ता पर विजय है। ईश्वर के इन्ही दो प्रतिनिधियो—कलाकार और राजा—के विचारो का संघर्ष इस एकांकी मे है।

प्राचीन ऐतिहासिक विषय के अनुकूल, भाषा मे प्रधानता तत्सम शब्दो की है। कवित्व की छटा स्थान-स्थान पर भाषा में सुकुमारता भर देती है।

संवाद तर्क-पूर्ण और प्रभावशाली है। अस्तित्व और जीवन के सम्बन्ध मे चन्द्रसेन और निर्झरिणी के वार्त्तालाप मे तर्क के साथ-साथ दार्शनिकता की भी झलक मिलने लगती है।

नाटकीय संकेत आवश्यकता से अधिक हैं। उसमे प्रकृति-सौदर्य्य का चित्रण प्रधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास या कहानी के वातावरण के समान ही लेखक ने प्रकृति-चित्रण किया है। साधारण एकांकियों से नाटक बहुत लंबा है। साहित्यिकता के गुणो से विभूषित होते हुए भी नाटक अभिनयोपयोगी है। कही-कही प्रकृति के दृश्य मे भावी घटना का सुन्दर संकेत है।

रामकुमार वर्मा

अधिकार का रक्षक

(एक व्यंग्य)

ले०—श्री उपेन्द्रनाथ अश्क

पात्र

मि० सेठ	एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असैम्बली के उम्मीदवार
रामलखन	उनका नौकर
भगवती	रसोइया

कालेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती सेठ, नन्हा बलराम

समय—आठ बजे सुबह।

स्थान—मि० सेठ के मकान का ड्राइंग रूम।

[बाईं ओर, दीवार के साथ एक बड़ी मेज़ लगी हुई है, जिस पर एक रैक मे करीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-बायें कोनों मे लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें एक मे आवश्यक कागज-पत्र आदि और दूसरी मे समाचार-पत्र रक्खे हैं। बीच मे शीशे का एक डेढ़ वर्ग-गज का चौकोर टुकड़ा रक्खा है जिसके नीचे कागज दबे हुए हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रक्खा हुआ है और एक दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज के इस ओर एक गद्देदार कुर्सी है, जिसके पास ही दाईं ओर

एक ऊँचा स्टूल है, जिसपर टेलीफोन का चोगा रक्खा हुआ है। स्टूल की दाईं ओर एक तख्त-पोश है, जिसमे सफाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुर्सी और तख्त-पोश के बीच मे स्टूल इस तरह है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोंगा दोनो जगहो से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्त पोश के पास एक आरामकुर्सी पडी हुई है। बाईं दीवार के साथ एक कौच का सेट है। बाईं दीवार मे दो खिडकियॉ हैं, जिनके मध्य केलेण्डर लटक रहा है। दाईं ओर दीवार मे एक दरवाजा है, जो घर के बरामदे मे खुलता है।

पर्दा उठने पर मि॰ सेठ कुर्सी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नजर आते हैं।

[टेलीफोन की घटी बजती है
मि॰ सेठ समाचार-पत्र ट्रे मे फेंक कर चोंगा उठाते हैं।]

"हेलो !"

(ज़रा और ऊँचे) "हेलो !"

"हॉ, हॉ, मै ही बोल रहा हूँ। घनश्याम दास ! आप··· अच्छा-अच्छा, रलाराम जी मंत्री हरिजन सभा हैं! नमस्ते। (जरा हँसते हैं) सुनाइए महाराज, कल जलसे की कैसी रही ?"

"अच्छा ! आपके भाषण के बाद हवा पलट गई ? सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये ?"

"ठीक ठीक ! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने ! वास्तव मे मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितो, पददलितो और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चो को ही लीजिए, घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है ? उनके लालन-पालन और

शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी ऊल-जलूल और दकियानूसी है ? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दबाव में रख कर उन्हे कितना डरपोक और भीरु बनाया जाता है ? उन्हे·· ···

[छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है ।]

बलराम—बाबू जी, बाबू जी, हमें मेले ··

मि० सेठ—(पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊँची हो जाती है) हाँ हाँ मै कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य ·

बलराम—(और समीप आ कर कुर्ते का छोर पकड़ कर) बाबू जी···

मि० सेठ—(चोंगे से मुँह हटा कर; क्रोध से) ठहर-ठहर कम्बख्त ! देखता नही मै टेलीफोन पर बात ··

[बच्चा रोने लगता है]

मि० सेठ—(टेलीफोन पर) मैं आप से अभी एक सेकेंड में बात करता हूँ, इधर ज़रा शोर हो रहा है ।

[चोंगा खट से मेज पर रख देते हैं ।]

(बच्चे से) "चल, निकल यहाँ से । सूअर ! कम्बख्त !!"

[कान पकड कर उसे दरवाजे की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है ।]

(नौकर को आवाज देते हैं) "ओ रामलखन, ओ रामलखन !"

रामलखन—(बाहर से) आये रहे बाबू जी !

[भागता हुआ भीतर आता है । साँस फूली हुई है ।]

"जी बाबू जी।"

[मि० सेठ नौकर को पीटते हैं।]

"सूअर! हरामखोर! पाजी! क्यो इसे इधर आने दिया? क्यो इधर आने दिया इसे?"

रामलखन—अब बाबू काहे मारत हो? लिये तो जात रहे।

[लडके का बाजू थाम कर उसे बाहर ले जाता है।]

मि० सेठ—और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आ कर खबर दे देना। समझे! नही तो मार मार कर खाल उधेड़ दूँगा।

[नौकर और लडके को बाहर निकाल कर जोर से किवाड़ लगा देते हैं।]

"हुँ अहमक! मुफ्त मे इतना समय नष्ट कर दिया।"

[चोंगा उठाते हैं।]

(तनिक कर्कश स्वर में) "हेलो ... (आवाज मे जरा विनम्रता ला कर) अच्छा, आप अभी है (स्वर को कुछ सयत करके) तो मै कह रहा था कि प्रांत मे मै ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन किया, जो घरो और स्कूलों मे छोटे-छोटे बच्चो पर किया जाता है और फिर वह मै ही हूँ, जिसने पाठशालाओ मे शारीरिक दंड को तत्काल बंद कर देने पर ज़ोर दिया। दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग घरो मे काम करने वाले भोले-भाले निरीह नौकर है, जो क्रूर मालिको के जुल्म का शिकार बनते हैं। इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने के हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनो का पक्ष लिया, उनके स्वत्वो की,

उनके अधिकारो की, रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धारा-सभा मे गया तो ·····"

[दरवाजा खुलता है ।]

रामलखन—(दरवाजे से झॉक कर) बाबू जी जमादारिन···

मि० सेठ—(टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनो की सेवा करूँगा ! आप अपनी हरिजनसभा मे इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—(जरा अन्दर आ कर) बाबूजी··

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन मे) नही नही, मै नौकर से कह रहा था (खिसियाने से हो कर हॅसते हैं) हॉ, तो आप घोषित कर दे कि मैं असैंबली मे हरिजनो के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक मे प्रोपेगेंडा करें।

"है···क्या ?···अच्छा अच्छा···मैं अवश्य ही जलसे मे शामिल होने का प्रयास करूँगा, क्या करूँ अवकाश नही मिलता हि हि ·हि हिं ·(हॅसते हैं) अच्छा नमस्कार है।"

[टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं]

(नौकर से) तुम्हे तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—आप ई तो कहे कि कोऊ आए तो इत्तला कर देई, मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी मॉगत···

मि० सेठ—(गुस्से से) कह दो उससे, अगले महीने आये। मेरे पास समय नही। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज- दूधो

नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गये हैं।

मि० सेठ—कह जो दिया। जाओ। अब समय नहीं।

[भगवती प्रवेश करता है]

भगवती—जयराम जी की बाबू जी।

मि० सेठ—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो।

मि० सेठ—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आज-कल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—बाबू जी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिये।

मि० सेठ—(जरा ऊँचे स्वर मे) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती—जब आपकी नौकरी करते हैं तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जायँ ?

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

भगवती—वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग मे बनिये की भेंट हो गया था। दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

मि० सेठ—(जेब से रुपया निकाल कर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती—नहीं बाबू जी, एक-एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिये। वेतन मिले तीन तीन महीने हो गये हैं। एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आखिर

बीबी बच्चे हैं, उन्हे भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने ··

मि० सेठ—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया, अभी यही ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती—हम तो आज ही सब ले कर जायँगे।

सेठ—(उठ कर, और भी क्रोध से) क्या कहा ? आज ही लोगे। अभी लोगे ! जा। नही देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जा कर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक, सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलुफ, में, यहाँ तक कि बाजार से आने वाली हर चीज़ में पैसा खाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकड़ता है। जा निकल जा। जा कर अदालत में मामला चला दे। चोरी के अपराध में छै महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं।

भगवती—सच है बाबू जी, गरीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है। और अमीर यदि आँखों में धूल झोंक कर हज़ारो पर हाथ साफ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रों ··

मि० सेठ—(क्रोध से पागल हो कर) तू जायगा या नहीं, (नौकर को आवाज देते हैं) रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बाबू जी, जी बाबू जी !

[भागता हुआ भीतर आता है]

मि० सेठ—इसको बाहर निकाल दो।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ चौड़े चकले शरीर को नख से

शिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि दें, ई हमसों कब निकस, ई तो हमें निकारि दे...

मि० सेठ—(बाजू से रामलखन को परे हटा कर) हट तुझ से क्या होगा ?

[भगवती को पकड़ कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं]

निकलो, निकलो।

भगवती—मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रख कर आप लक्षाधीश न हो जायँगे।

[मि० सेठ उसे बाहर निकाल कर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं]

मि० सेठ—(रामलखन से) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो ? निकलो।

[रामलखन डर कर निकल जाता है।]

(तख्त-पोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल !

[फिर उठ कर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज देते हैं—]

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—(बाहर से) आए रहे बाबू जी !

[प्रवेश करता है]

मि० सेठ—अखबार अभी आया है कि नहीं ?

रामलखन—आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाए देत।

मि० सेठ—पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार तुझे कहा अखबार पहले इधर लाया कर ! ला भाग कर।

[रामलखन भागता हुआ जाता है]

मि० सेठ—(घूमते हुए अपने आप) मेरा वक्तव्य कितना ज़ोरदार था, छात्रो मे हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

[टेलीफोन की घटी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।]

(टेलीफोन पर, धीरे से) "हेलो !"

(जरा ऊँचे) "हेलो !·· कौन साहब ?· मन्त्री होज़री-यूनियन ! अच्छा अच्छा, नमस्कार, नमस्कार। सुनाइये, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?"

"क्या ?·· ··सब मेरे हक मे वोट देने को तैयार हैं। मै कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।"

"इस ओर से आप बिलकुल निश्चिन्त रहे। मैं उन आदमियो मे से नही जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा) नहीं पढ़ा। मैं असैम्बली मे जाते ही मज़दूरो की अवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगो के सम्बन्ध मे विशेष बिल धारासभा मे पेश करूँगा।"

"क्या ? हाँ · हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नही। मैं जानता हूँ इस सिलसिले से श्रमजीवियो को किस-किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजी-पति गरीब मज़दूरों के कई कई महीनो के वेतन रोक कर उन्हे भूखो मरने पर विवश कर देते हैं, स्वयं मोटरो मे सैर करते हैं, शानदार होटलों मे खाना

खाते हैं, और जब ये गरीब रात-दिन परिश्रम करने के बाद—लोहू पानी एक कर देने के बाद अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हे हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बना टाल देते हैं। मैं असैंबली मे जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे मे मज़दूरो की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायॅ और जिन लोगो ने गरीब श्रमियों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रक्खे हों उनके विरुद्ध मामला चला कर उन्हें दंड दिय जाय।"

"हॉ, आपकी यह मॉग भी सोलहों आने ठीक है। मै असैंबली मे इस मॉग का समर्थन करूँगा। सप्ताह मे ४२ घण्टे काम की मॉग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अंतर होना ही चाहिए। तेरह-तेरह घण्टे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है!"

[धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है। और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं]

[पतले-दुबले से—ऑखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं। और ऐसा प्रतीत होता है जैसा आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।]

[धीरे से दरवाजा बन्द करके खड़े रहते हैं]

मि० सेठ—(संपादक से) आप बैठिए (टेलीफोन पर) "ये हमारे संपादक महोदय आये हैं। अच्छा तो संध्या को आपकी सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिये। नमस्कार!"

[चोंगा रख देते हैं।]

(सपादक से) बैठ जाइये। आप खड़े क्यो हैं ?

सम्पादक—नहीं, कोई बात नही।

[तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिये आता है।]

रामलखन—बड़े काका तो देत नही रहन, मुदा जबरदस्ती लेई आये।

मि० सेठ०—(समाचार-पत्र ले कर) जा, जा बाहर बैठ !

[कुर्सी को तख्त-पोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।]

संपादक—मै ··मै ··

मि० सेठ—(अखबार बन्द करके) हाँ, हाँ, पहले आप ही फर्माइए।

संपादक—(ओंठों पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी ·· मेरा मतलब है ··कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं।

मि० सेठ—आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था ! कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

संपादक—नही, यह बात नहीं, (थूक निगल कर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सहन कर सकती। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

मि० सेठ—तो आप इतना न बैठा करें, बस जल्दी काम निबटा दिया ..।

संपादक—मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है ? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं न ठीक लेख लिख सकते हैं। और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठो का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्द खतम हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़ ..।

मि० सेठ—हाँ हाँ, समाचार तो न रहना चाहिए।

संपादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हे ठीक करते-करते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं।

मि० सेठ—(बेजारी से) तो आखिर आप क्या चाहते हैं ?

संपादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दे तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। जिससे…

मि० सेठ—मैं आप से पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। अखबार कोई बहुत लाभ पर नही चल रहा। इसपर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है ? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

संपादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घण्टे काम कर सकती हैं।

मि० सेठ—कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी। छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहे तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायँगे, लेकिन...

[रामलखन भीतर आता है]

रामलखन—बाहर दुइ लड़िका आपसे मिलना चाहत रहन।

मि० सेठ—कौन हैं ?

रामलखन—कोई सकटडी कहे रहन..

मि० सेठ—जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र मे मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है मालूम होता है, उसका कालेज के लड़को पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

संपादक—(मुँह फुलाए हुए) अवश्य पड़ा होगा।

मि० सेठ—मैंने छात्रों के अधिकारो की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं मैंने उन सबका समर्थन किया है।

[दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के गले में खुले कालर की कमीज है।]

दोनों—नमस्ते !

मि० सेठ—नमस्ते !

[दोनों कौच पर बैठते हैं।]

मि० सेठ—कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालर वाला—हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि० सेठ—आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का—छात्रों मे सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि० सेठ—आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का—कल तक तो कुछ न पूछिए, लेकिन मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी तरफ था।

मि० सेठ—(प्रसन्नता से) और मैंने गलत ही क्या लिखा है! जिन लोगो का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे ? युवको को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफार्म से खौफ न खाये, सुधारो से कन्नी न कतराये।

वही लड़का—हम अपने कालेज के प्रबन्ध मे भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्वे-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि० सेठ—आपको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—हमने हडताल कर दी है।

मि० सेठ—आप ने क्या माँगें पेश की हैं ?

वही लड़का—हम वर्तमान प्रिंसिपल को नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है, कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नाते-

दारों से अत्यन्त अपमान-जनक है।

मि० सेठ—(कुछ उत्साहहीन हो कर) तो आप क्या चाहते हैं?

दोनो—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

मि० सेठ—(गिरी हुई आवाज में) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग मे लाते, प्रबंधकों से मिल जुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

मि० सेठ—हूँ!

टाई वाला लड़का—बात यह है जनाब, कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असंतोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवा न की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबंधक-कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानो पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है, पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारो की रक्षा का बीड़ा उठाया है, इसीलिए हम आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं।

मि० सेठ—(अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर मे जा कर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे छाप देंगे।

दोनो—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी

की सेवा मे उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक—नमस्कार।

[दोनों का प्रस्थान]

मि० सेठ—(सम्पादक से) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज़ न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु है और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक—(मुँह फैलाए हुए) बहुत अच्छा।

मि० सेठ—आप घबरायें नही, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफत आ गई। जब मैंने अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पंद्रह-पंद्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़ कर) बहुत अच्छा।

[मि० सेठ समाचार-पत्र पढना शुरू कर देते हैं। दरवाजा जोर से खुलता है और बलराम का बाजू थामे श्रीमती सेठ बगूले की भाँति प्रवेश करती हैं]

श्रीमती सेठ—मै कहती हूँ, आप बच्चो से कभी प्यार करना भी सीखेंगे। जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नजर आते हो, जैसे बच्चे अपने न हो, पराये हो। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे ? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ—(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हे कभी बात करने का सलीका भी आयगा। जाओ इस समय मेरे

पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है! इतनी देर से ढूँढ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसो आवाजे दी, घर का कोना कोना छान मारा। आखिर देखा कि भूसे की कोठरी मे बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी?

मि० सेठ—(क्रोध से अखबार को तख्त-पोश पर पटक कर) क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सब को सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह-सुबह दिमाग चाटने के लिए।

[श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड लगाती हैं, बच्चा रोता है]

श्रीयती सेठ—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया कर। ये बाप नही दुश्मन हैं। लोगो के बच्चो से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चो के लिए भूल कर भी प्यार का एक शब्द ज़बान पर न लायेंगे।

[बच्चे के और चपत लगाती हैं]

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे मे। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती (आवाज़ ऊँची होते होते रोने की हद को पहुँच जाती है)। स्वयं जा कर दिखा लाती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने, कान तुड़वाने?

मि० सेठ—(क्रोध से पागल हो कर, पत्नी को ढकेलते हुए)—मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जा कर पीटो, यहाँ इस कमरे मे

आ कर क्यो शोर मचा दिया। अभी कोई आ जाय तो क्या हो? कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया करो। घर के अन्दर जा कर बैठा करो।

[श्रीमती सेठ तुनक कर खड़ी हो जाती हैं।]

श्रीमती सेठ—आप कभी घर के अंदर आये भी। आप के लिए तो जैसे घर के अंदर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे मे खाओ, टेलीफोन सिरहाने रख कर इसी कमरे मे सोओ, सारा दिन मिलने वालो का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठते सोचते रहो। आखिर हमे कुछ कहना हो तो किस समय कहे?

मि० सेठ—कौन सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ—सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए। कहे तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

[उन्मादियों की भाँति बच्चे का सिर पकड़ कर तख्तपोश पर मारती हैं। मि० सेठ तड़ातड़ पीटते हैं।]

मि० सेठ—मैं कहता हूँ तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जा कर मारो, पीटना है तो उधर जा कर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जा कर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बकबक से तंग आ कर मैं इधर एकान्त मे आया हूँ। अब यहाँ आ कर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है! क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

श्रीमती सेठ—(रोते हुए) आप क्यो चले जायॅ ? हम ही चले चायॅगे !

[भर्राई हुई आवाज मे नौकर को आवाज देती हैं]

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बीबी जी।

[प्रवेश करता है]

श्रीमती सेठ—जाओ। जा कर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी। (तेजी से बच्चे को ले कर चली जाती हैं। दरवाजा जोर से बन्द होता है।)

मि० सेठ—बेवकूफ !

[आरामकुर्सी पर बैठ कर टॉगें तख्तपोश पर रख देते हैं और पीछे को लेट कर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घटी बजती है।]

मि० सेठ—(वहीं से चोंगा उठा कर कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो ! नही, यह ३८१२ है, गलत नंबर है।"

[बेजारी से चोंगा रख देते हैं]

ईडियट्स *

[टेलीफोन की घटी फिर बजती है]

(और भी कर्कश स्वर मे) "हेलो ! हेलो !"

"कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठ कर बैठता है। चेहरे पर मृदुलता और आवाज में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजिएगा, मैं जरा परेशान हूॅ। सुनाइए, तबीयत तो ठीक है ?"

---

* मूर्ख।

(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है? मै भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ, अत्यंत आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मै जी-जान से स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा करूँगा। महिलाओ के अधिकारो का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारो मे कही नज़र न आयेगा। ."

[पर्दा गिरता है]

माँ-बाप

(श्री विष्णु)

पात्र

अशोक	...	कालिज का एक विद्यार्थी
यदुनाथ	...	अशोक का सहपाठी
दामोदरस्वरूप	...	अशोक का पिता
रामदास	...	यदुनाथ का पिता
अमृतराम	...	देश के प्रसिद्ध नेता
कलावती	...	अशोक की माँ
जगवन्ती	...	यदुनाथ की माँ
अनिता	...	अशोक की बहन

डाक्टर, अनवर, शमशेर, राजेन्द्र, आदि कुछ युवक

प्रथम दृश्य

[एक छोटे से कस्बे में एक विशाल भवन का भीतरी भाग। अलग-अलग उसमें अनेक कुटुम्ब बसते हैं। इस समय वहाँ सन्नाटा है। कभी-कभी किवाड़ खुलने या बोलने की आवाज सुन पड़ती है।

इसी भवन के ऊपरी भाग में एक छोटा-सा कमरा है। अनुपात से सामान उसमें बहुत है। कपड़ों के तीन ट्रङ्क, दो चीड़ की बेड, साइड टेबुल, तीन मोढे और तीन चारपाई। ऊपर की दीवार पर केवल नये साल का एक कैलेण्डर लटका है। एक अलमारी है, उसमे कुछ पुस्तकें, टीन के डब्बे, दो चायदानियाँ और दो तीन गिलास हैं। ऊपर आले मे सस्ती टायमपीस पौने आठ बजा रही है।

कमरे के बीच मे तीनों चारपाइयाँ पास पास बिछी हैं। बिछावन साधारण है। दरवाजे के पास वाली चारपाई पर एक स्त्री अनमनी सी बैठी है। उसका रंग गोरा और आकृति सुन्दर है। उमर लगभग ४५ है। दूसरी चारपाई पर एक पुरुष आँखें बन्द किये लेटा है। उसे ज्वर चढा है। क्षण-क्षण में जाग कर वह स्त्री की ओर देख लेता है। फिर लम्बी साँस ले कर आँखें मीच लेता है। उसकी आयु ५७ के ऊपर है। तीसरी चारपाई पर लडकी कम्बल ताने गहरी नींद में सोई है। सहसा स्त्री चौंक कर उठती है। नीचे कहीं तीन-चार आदमी बोलते सुन पड़ते हैं।]

स्त्री—(खुश हो कर) जान पड़ता है अशोक आ गया!

पुरुष—(आँखें खोल कर) अशोक आ गया है ? कहाँ है ?

स्त्री—आप उठे क्यों ? लेट जाइए। मैं देखती हूँ।

[स्त्री शीघ्रता से चली जाती है। पुरुष उसी तरह बैठा रह जाता है। स्त्री फिर आती है।]

स्त्री—(घबरा कर) आप अपनी कुछ भी चिता नहीं करते। अशोक नहीं आया है। राम बाबू देहली जा रहे है। अशोक की छुट्टियाँ आज से शुरू होती हैं। शायद कल आयेगा।

[वे चुपचाप आँखें बन्द कर लेते हैं। स्त्री अपनी खाट पर आ बैठती है।]

पु०—(आँखें खोल कर) सुनती हो ?

स्त्री—क्या जी ?

पु०—पंडित रामसेवक ने अशोक का वर्ष-फल बनाया है। कहता है इस वर्ष ग्रह बहुत सुन्दर हैं, जल्दी ही उसका नाम संसार भर मे फैल जायगा।

स्त्री—(प्रसन्नता से भर कर) सच !

पु०—पंडित रामसेवक माने हुए ज्योतिषी हैं। उनकी बात झूठ नही हो सकती और देखो न, अभी से उसका नाम अखबारो छपने लगा है।

[कहते-कहते पुरुष की छाती उमड़ती है, बोल नहीं सकता।]

स्त्री—(श्रद्धा से) पुत्र के भाग के साथ माँ-बाप की किस्मत जुड़ी होती है।

पु०—(गद्गद हो कर) कुछ भी हो, दुनिया इस बात को जान लेगी कि दामोदरस्वरूप ने आप मुसीबते उठाईं परंतु लड़के को शिक्षा देने मे कसर न रखी।

[इसी समय पास की चारपाई पर लड़की बड़बड़ा उठती है]

स्त्री-पुरुष—(एक-साथ चौंक कर) क्या है अनिता ? क्या है बेटी ?

लड़की—(नींद में) भइया··· (ज़ोर से) भइया तुम कहाँ जा रहे हो ? (करुणा से) मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, भइया (ज़ोर) से) ओ भइया···

स्त्री—(पास जा कर) अनिता ! अनिता !

अनिता—(हड़बड़ा कर) माँ !

स्त्री—क्या है बेटी ?

[अनिता उठ बैठती है। वह लगभग १५ साल की सुन्दर लड़की है। घबराहट के कारण इधर-उधर देखती है। पर माँ को देख कर उसे ढाढस होता है।

स्त्री—(पास बैठ कर) सपना देखती थी ? बेटी क्या था ?

अनिता—बड़ा बुरा सपना था माँ, भइया न जाने कहाँ चले गये ?

स्त्री—(मुसकरा कर) कहाँ चले गये अनिता !

अनिता—माँ ! एक वाटिका मे मैं और भइया बैठे थे कि एक युवक ने आ कर कहा—'अशोक ! लड़ाई आरम्भ हो गई। वे पागल हो उठे हैं। आओ हम चलें।' भइया उसी वक्त दौड़ पड़े। मैंने कहा—'कौन लड़ रहा है, भइया ?' भइया नही बोले। और वे चले गये, उसी तरह नंगे पाँव और निहत्थे ! (कुछ रुक कर) भइया नहीं आये माँ !

स्त्री—कल सवेरे आयेगा बेटी !

पु०—(सोच कर) सपने का फल अच्छा होगा ! रने की बात नहीं।

स्त्री-अनिता—(एक साथ) सच ! अच्छा होगा ?

पु०—हाँ, ऐसे सपनों से उमर बढ़ने का योग होता है।

अनिता—तब तो ठीक है माँ ! (मुड़ कर) ज्वर कैसा पिताजी ?

पु०—(हँस कर) उतर जायगा बेटी ! (कुछ आहट पा कर ऊपर देखते हैं) रामदास, आओ रामदास ! कैसे आये ?

[रामदास का प्रवेश]

रामदास—ज्वर उतरा भइया !

दामोदरस्वरूप—उतर जायगा ! यदु आया क्या ?

राम०—वही तो पूछता था ! अशोक भी नहीं दिखाई पड़ता। क्या बात है ? घर मे तो रो-रो कर पागल हो रही है।

दा०—तुम्हारी स्त्री बड़ी कच्ची है। अरे ! वे क्या बालक हैं जो खो जायँगे !

रा०—यह तो मैं भी जानता हूँ भइया ! पर वह नहीं सुनती ! कहती है—तुम जाओ !

स्त्री—वह माँ है रामदास ! माँ का दिल बड़ा पापी होता है ?

रा०—और तुम क्या हो भाभी ?

दा०—अरे रामदास ! यह कम नही है ! घंटों से गाडी की गड़गड़ाहट कानो मे गूँज रही है। यह अनिता तो सोते-सोते भी भइया-भइया चिल्ला रही थी। (हँसता है)

रा०—(पिघल कर) भइया ! साल मे एक बार तो आते हैं।

[दामोदरस्वरूप आँखें मीच लेता है। रामदास उठ कर चला जाता है। अनिता फिर मुँह लपेट कर लेट जाती है। केवल स्त्री (कलावती) उसी तरह बैठी रहती है। घड़ी मे नौ बजे हैं। वह झुक कर चारपाई के नीचे से एक टोकरा निकाल लेती है। उसमें सूत की कुकड़ियाँ और अटेरन रखा है। कलावती चुपचाप अटेरती है।]

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[समय सन्ध्या के पॉच बजे हैं। उसी भवन के एक दालान मे कलावती रसोई के प्रबन्ध मे लगी है। अशोक अब तक नहीं आया। चिट्ठी आई है "कि शहर मे अशान्ति है, हिन्दू-मुस्लिम लडाई का भय है! आप लोग चिन्ता न करना। हमे बिलकुल डर नहों है।" पर यहॉ सब चिन्ता कर रहे हैं। यदु की मॉ (जगवन्ती) रो रो कर पागल हो रही है। कलावती भी उद्विग्न है। दिल उसका भी धक् धक् कर रहा है। उसी समय जगवन्ती वहॉ आती है। वह ४० के लगभग है। रोते-रोते उसका चेहरा फीका पड़ रहा है।]

जगवन्ती—तुमने सुना भाभी! वहाँ लड़ाई हो रही है। अब क्या होगा?

कलावती—ठीक होगा जगवन्ती! कालेज तो शहर से दूर है।

जगवन्ती—तुम नही जानतीं भाभी, कालेज दूर होगा, पर वे ज़रूर गये होंगे।

कलावती—तुम आप ही सोच लेती हो कि वे गये होंगे। कालेजवाले क्या उन्हे जाने देंगे?

जगवन्ती—चाहती तो मैं भी हूँ कि वे न गये हों, पर भाभी, मन नहीं मानता। मैं क्या करूँ? (रोने लगती है)

कलावती—(हँस कर) अरे तुम रोने लगीं! कितनी कच्ची हो तुम! (रामदास को देख कर) क्या है जी? क्या खबर आई?

रामदास—(बोलते हुए हाँफता है) अखबार आया है!

जगवन्ती-कलावती—(एक साथ) अखबार! क्या लिखा है अखबार में ?

रामदास—(पढ़ता है)······शहर में बहुत जोर का दंगा हो गया है ··

कलावती—ओह!

जगवन्ती—कालेज का कुछ नहीं लिखा ?

रामदास—(उसी तरह पढ़ता हुआ) नगर कांग्रेस कमेटी दंगा रोकने का प्रयत्न कर रही है। उसने सरकार के साथ सहयोग किया है, लेकिन सब से बढ़ कर कालेज की पार्टी है ··

कलावती-जगवन्ती—(एक साथ कॉप कर) कालेज की पार्टी

रामदास—(उसी तरह) मानवता के पुजारी १५ नवयुवक पागलो की तरह आग मे बढ़े चले जा रहे हैं। उन्होने सैकड़ो बेगुनाह आदमियो को मरने से बचा लिया है। उनका सरगना एक खूबसूरत और तगड़ा जवान है। उसका नाम अशोक है ··।

कलावती—(कॉप कर) अशोक ! मेरा अशोक !!

जगवन्ती—लेकिन यदु का नाम नही है। वह जरूर उसके साथ होगा। वह अशोक को नही छोड़ सकता।

कलावती—(अनसुना कर के) अशोक अब नही आयेगा। अशोक का नाम ··

[वह बोल नहीं सकती, उसका हृदय उमड़ कर बह पड़ता है।]

रामदास—(ढाढस के स्वर में) भाभी, रोनी हो ? नहीं भाभी, जो पुण्यात्मा हैं, भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।

जगवन्ती—भगवान्!...भाभी मैं कहती थी मेरा दिल घबड़ा रहा है। मैं जानती थी। बेटा माँ के दिल ही मे तो रहता है। भाभी! तुम रोती हो लेकिन मैं क्या करूँ मै क्या करूँ? (रामदास से) सुनते हो मैं जाऊँगी ।

रामदास—कहाँ जाओगी? वहाँ के रास्ते बंद हैं।

कलावती-जगवन्ती—(एक साथ) रास्ते बंद हैं!

रामदास—हाँ भाभी! अब तो हमे परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये।

जगवन्ती—(रोती हुई) परमेश्वर...परमेश्वर!...

कलावती—(हठात् स्वस्थ हो कर) रोओ मत जगवन्ती! रोना पाप है।

[अनिता का हाँफते-हाँफते प्रवेश]

अनिता—माँ! क्या भइया लड़ाई में चले गये।

कलावती—(दृढता से) हाँ बेटी! तुम्हारे भइया ने यदु के साथ सैकडो जानें बचाई! वे सकुशल हैं।

अनिता—(रामदास से) सचमुच क्या चाचा जी?

रामदास—सच बेटी! अखबार है तू पढ़ ले न!

[अनिता अचरज से पढती है। आँखों में पानी भर आता है। जगवन्ती पागलों की तरह उसे देखती है। रामदास भी उमड़ते हुए हृदय से आँसू रोकता है। केवल कलावती मुसकराती है। अनिता एकदम पढना बद कर देती है]

अनिता—चाची, तुम रोओ मत! मैं पिताजी से जा कर कहती हूँ कि भइया ने बहुत सुन्दर काम किया है।

[अनिता झपट कर जाती है। कलावती और रामदास भी पीछे-पीछे जाते हैं।]

जगवन्ती—(रोती हुई) ये लोग कितने कठोर हैं! पर मैं क्या करूँ! जिस दिन अशोक और यदु मुझे आ कर प्रणाम करेंगे उसी दिन मैं समझूँगी परमेश्वर ने बड़ा काम किया है! नहीं...नहीं...ओह मैं भी क्या करूँ?

[वह फूट-फूट कर रो उठती है। परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

[समय प्रातः ८ बजे। स्थान दामोदरस्वरूप का वही कमरा। वे लेटे हैं, तीन ही दिन में उनकी दशा एक जन्मरोगी की सी हो गई है। मुख पीला पड गया है। उठते-उठते गिर पड़ते हैं। पास ही कलावती बैठी है।

दामोदरस्वरूप—रामसेवक पंडित की बात कितनी ठीक हो रही है। बच्चा-बच्चा अशोक का नाम लेता है।

कलावती—ऐसे पुत्र को पा कर हम धन्य हुए। न जाने हमने कितने पुण्य किये होंगे।

दामोदरस्वरूप—मैं चाहता हूँ उड़ कर उसके पास पहुँच जाऊँ और छाया की तरह उसके साथ लगा । (हठात् चौंक कर) कौन?

(आवाज सुन पड़ती है) माँ! पिताजी! यदु भइया आये हैं। माँ...

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) अनिता! यदु!!

[अनिता का प्रवेश, वह हाँफ रही है]

अनिता—माँ, पिताजी ! अभी यदु भइया आये हैं। वे कहते हैं, भइया कुशल से हैं।

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) कहाँ है यदु ? यदु कहाँ है ? (उठने की चेष्टा करते हैं)

अनिता—नही, नही ! आप उठिए नहीं पिताजी, वे यहीं आ रहे हैं।

[यदु का प्रवेश । जगवन्ती और रामदास भी हैं। यदुनाथ २० वर्ष का साँवला युवक है। उसके हाथ मे चोट लगी है पर वह खुश है। सबको प्रणाम करता है।]

कलावती दामोदरस्वरूप—(एक साथ मिल कर) तुम जुग-जुग जिओ बेटा ! जीते रहो बेटा !

दामोदरस्वरूप—अशोक कैसा है यदु ?

यदुनाथ—सब ठीक है ताऊजी ! उन्होंने ही मुझे भेजा है कि आप लोग दुखी न हो। स्टेशन तक साथ आये थे। शीघ्र ही शांति होने पर वे भी आवेंगे।

दामोदरस्वरूप—अभी तक लोग लड़ रहे है ? कैसे हैं वहाँ के आदमी !

यदुनाथ—आदमी तो हमारे जैसे ही हैं। पर कभी-कभी आदमी के भीतर राक्षस जाग पड़ता है ।

रामदास—परमात्मा की लीला है बेटा ! जो वह चाहता है वही होता है।

यदुनाथ—(एकदम तेज हो कर) आपके इस परमेश्वर ही

ने तो सब अनर्थ किया है। जो परमेश्वर आदमी को आदमी का रक्त पीने की प्रेरणा दे, उसे हम नहीं मानते। इस परमेश्वर ने इतनी सुन्दर पृथ्वी पर इतने भयानक आदमी क्यों पैदा किये ?...

रामदास—(सकुचा कर) लेकिन बेटा, उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नही हिलता। और वह सब भले के लिए करता है।

यदुनाथ—(उसी तरह) यदि वह सब भले के लिए करता है तो क्यो आप लोग पागलो की तरह रोते हो ? क्यो नही परमेश्वर का विधान मान कर पुरुषो की तरह उत्सव मनाते कि तुम्हारे पुत्रो ने मरती हुई मानवता की रक्षा की है ?

दामोदरस्वरूप, रामदास और कलावती—(एक साथ) तुम क्या कहने लगे बेटा। नहीं-नहीं, बेटा पागल यदु क्या बकने लगा !

जगवन्ती—(रोती-रोती) तू क्या जाने माँ-बाप का दिल कैसा होता है ?

यदुनाथ—जानता हूँ माँ ! मेरे लिए तुम्हारे प्राण निकल रहे हैं। अशोक को, माँ, तुम चाहती होगी। पर माँ, क्या तुम जानती हो, हमारे साथ और कितने माँ के लाल हैं। उनमे सिक्ख हैं; मुसलमान हैं। उनके लिए क्या तुम्हारी आँखो से पानी की एक बूँद भी टपकी ? और जाने दो माँ, यदि मै आ कर तुमसे कहता—माँ ! आदमी आदमी के खून से होली खेल रहा है। मैं उसे रोकने जा रहा हूँ, तो क्या तुम जाने देतीं ?

[सब एक दम चुप रह जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है।]

यदुनाथ—बोलो पिताजी ! तुमने हमे कायर नहीं बना डाला ? तुम्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी विशालता सब स्वार्थ की क्षुद्र सीमा मे बँधे हैं।

कलावती—यदु ! तुम क्या कहने लगे ? तुम्हे किसने बताया कि हम नाराज हैं। हमे तुम पर इतना गर्व है कि छाती फटी जाती है ! बेटा ये प्रेम और अभिमान के आँसू हैं, लेकिन कहो तो तुमने क्या किया !

यदुनाथ—(शात हो कर) हमने क्या किया यह हम नही जानते। अशोक ने जो कहा वही किया। वे आयेंगे तो सुना देंगे।

कलावती—अशोक सुनावेगा ? नही यदु ! वह भी क्या बोलना जानता है ?

यदुनाथ—(नम्र हो कर) तुम ठीक कहती हो, अशोक भइया बोलना नहीं जानते। लेकिन ताई ! कर्मशील पुरुषो की वाणी होती ही नही। अच्छा मैं यही कहने आया था कि हम सब कुशल हैं, आप लोग चिन्ता न करें ! मैं अभी जाऊँगा !

कलावती—अभी ?

यदुनाथ—हाँ अभी ! अधिक देर नही ठहर सकता। उन लोगों को छोड़ कर क्या मुझे यहाँ बैठना सोहता है ?

जगवन्ती—लेकिन बेटा······!

यदुनाथ—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं माँ ! मैं जरूर जाऊँगा। तुमने मुझे देख लिया। दूसरे बेटों की माताएँ भी तो तरस रही होंगी ! पिताजी······!

रामदास—(चौंक कर) मैं कहता था कि गाड़ी शाम को···

यदुनाथ—(बीच ही में) यह कैसे हो सकता है पिताजी ! मैं इसी गाड़ी से जाऊँगा।

रामदास—(उद्विग्नता को रोक कर) अच्छा, अच्छा ! मैं अभी आता हूँ (एक क्षण रुक कर) मै कहता था कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ तो ......।

जगवन्ती—हाँ हाँ, तुम जरूर चले जाओ।

यदुनाथ—नही पिताजी ! केवल मै जाऊँगा। और अभी जाऊँगा। आप अभी ताँगा मँगा दीजिए।

[ताँगा मँगाने के लिए रामदास जाता है]

यदुनाथ—(हँस कर) इस धर्म ने आदमी को आदमी का खून पीना सिखाया है। इस ईश्वर ने ही हमको कायर बना दिया है !

जगवन्ती—लेकिन मैं कहती थी तू खाना तो खा ले।

यदुनाथ—नही माँ ! (एक क्षण रुक कर) अच्छा ! चलो !

[जगवन्ती जल्दी से चली जाती है]

यदुनाथ (उठ कर)—मैं अब जाऊँ ?

दामोदरस्वरूप—(अनसुनी कर के) यदु बेटा ! क्या सचमुच अशोक का नाम लोग श्रद्धा से लेते है ?

यदुनाथ—हाँ ताऊजी ! अशोक भइया ने वह काम किया है जो बड़ी-बड़ी आत्माएँ नही कर सकती।

दामोदरस्वरूप—सचमुच तुम ऐसा समझते हो यदु !

यदुनाथ—मैं कहता हूँ अशोक भइया सदा के लिए अमर हैं।

दामोदरस्वरूप—(गद्‌गद हो कर) तुम जुग-जुग जीओ बेटा ! (एक क्षण रुक कर) कुछ भी हो दुनिया कहेगी दामोदर ग़रीब

था, लेकिन सन्तान के प्रति उसने अपना कर्तव्य पूरा किया।

[तभी रामदास की आवाज सुनाई देती है—'यदु! ताँगा आ गया है।' यदु उठता है। अनिता और कलावती भी उठती हैं।]

यदुनाथ—नमस्कार ताऊजी!

दामोदर—परमात्मा तुम्हे कुशल से रखे बेटा! तुम जल्दी लौट आना।

[कलावती उसे छाती से भर कर माथा चूम लेती है। आँखों मे पानी भर आता है। यदु चुपचाप बाहर निकल आता है। केवल अनिता साथ जाती है।]

अनिता—यदु भइया! तुम उन सबसे कहना कि तुम्हारी बहन अनिता को तुम जैसे भाइयो पर बड़ा गर्व हो रहा है। वहाँ से लौटो तो एक बार यहाँ अवश्य आना—मैं बाट देखूँगी, अच्छा!

[अनिता बड़ी शीघ्रता से यह सब कुछ कह गई। उसकी आँखें भर आईं, पर वह मुसकरा उठी। इससे पहले कि यदु उसे कुछ कहे वह झपट कर लौट गई, वह देखता ही रह गया।]

[पटाक्षेप]

चौथा दृश्य

[वही विशाल भवन। वही दामोदरस्वरूप का कमरा। अब उसमें केवल एक चारपाई है। उसपर उनका एकमात्र बेटा अशोक लेटा है। उसे खूब तेज बुखार चढ़ा है। उसके सिर, हाथ और पैरों पर पट्टियाँ बँधी हैं। पट्टियों पर जगह-जगह लहू चमक आया है। उसकी आँखें बन्द हैं।

दामोदरस्वरूप कुंठित, मलिन उसके सिरहाने की तरफ फर्श पर बैठे हैं। कलावती पागल सी बेटे को देख रही है, अलग कोने में अनिता है जो क्षण में गम्भीर और क्षण मे द्रवित हो उठती है।

फर्श पर दामोदर के पास रामदास, जगवन्ती, यदु और पाँच छः नवयुवक बैठे हैं। वे सब दुःख और सुख के फाँसे अशोक की ओर देख रहे हैं।

डॉक्टर भी है। वह गौर से अशोक की परीक्षा कर रहा है।]

डॉक्टर—(गम्भीर हो कर) मैं इन्हे होश मे ला सकता हूँ परन्तु

दामोदरस्वरूप—परन्तु क्या डॉक्टर साहब!

डॉक्टर—मैं कहता था रात गुज़र जाती तो ठीक था।

दामोदरस्वरूप—डॉक्टर साहब! मैं गरीब हूँ पर अशोक के लिए जो कहोगे वही करूँगा। जो माँगोगे वही दूँगा। दुनिया नही कह सकेगी कि दामोदर बेटे के लिए कुछ करने मे झिझका था।

डॉक्टर—नही! मैं यह नही सोचता। अशोक के लिए मैं कुछ कर सका तो धन्य हूँगा।

एक युवक—डॉक्टर! मुझे अचरज है, भइया के प्राण कहाँ अटके है।

दूसरा युवक—ये अकेले ही तो स्टेशन से लौट रहे थे कि पाँच सौ मज़हबी दीवानो ने घेर लिया।

तीसरा युवक—डॉक्टर! जिसने सैकड़ो जाने बचाई उसका यह अंत!

[सहसा अशोक आँखें खोल देता है।]

अशोक—(क्षीण स्वर मे) माँ !

कलावती—(अतिशय गद्‌गद हो कर) हाँ बेटा !

अशोक—कौन रोता था माँ ! तुम थीं ? तुम रोओ नही। मैं अच्छा हो जाऊँगा और न भी हुआ तो भी तुम रोना मत। एक के बदले असंख्य अशोक तुम्हे मिलेगे माँ

कलावती—मै नही रोती बेटा ! मै रोऊँगी क्यो ?

अशोक—अनिता कहाँ है ?

अनिता—(चौंक कर) भइया !

अशोक—अनिता ! तूने बुलाया था न ? हम आये है, क्या कहती है तू ? आरती करनी होगी ? जा बुला ला अपनी सखियो को और अपने जी की निकाल ले''।

[अशोक फिर आँखें बन्द कर लेता है। देश के प्रसिद्ध नेता डाक्टर अमृतराम प्रवेश करते हैं।]

अमृतराम—कहाँ है अशोक ?

दामोदरस्वरूप—(उठ कर) इधर है इधर। आप यहाँ आइए। (प्रफुल्लित हो कर) अब डर नहीं है। आप आये है। परमेश्वर ने आप को भेजा है, आप ज़रूर अशोक को बचा लेंगे।

अमृतराम—आप अशोक के पिता हैं ?

दामोदरस्वरूप—(गर्व से) जी हाँ ! मै अशोक का पिता हूँ, वह माँ है, वह बहन अनिता है। मैं अशोक के लिए कुछ भी उठा न रखूँगा !

[अमृतराम गम्भीर हो कर अशोक की जाँच करते हैं, उनका चेहरा चिन्तित हो जाता है।]

अमृतराम—अच्छा हो यह रात शान्ति से बीत जाय।

अशोक—पिताजी! (अशोक आँखें खोल देता है।)

दामोदरस्वरूप—तुम बोलो मत बेटा!

अशोक—यदु कहाँ है?

यदुनाथ—(आगे बढ़ कर) मैं यहाँ हूँ।

अशोक—तुम जानते हो यदु, हमने क्या प्रतिज्ञा की थी? मेरे माँ-बाप को मालूम न होने देना कि अशोक अब दुनिया मे नही है।

यदुनाथ—(चुपचाप नीची गरदन करके आँसू टपकाने लगता है) तुम ऐसा क्यो कहते हो अशोक!

[अशोक नहीं बोलता। सब फिर चिन्तातुर हो कर एक दूसरे को देखते हैं।]

अमृतराम—(हठात् चौंक कर) पक्षी उड़ना चाहता है!

कलावती, दामोदरस्वरूप, अनिता—(घबरा कर एक साथ) क्या आ-आ?

रामदास, जगवन्ती—(एक साथ) आप देखिए तो डाक्टर साहब!

डाक्टर—(सिर हिला कर) देख तो रहा हूँ, खेल समाप्त हो चुका है। एक दिव्यात्मा पृथ्वी पर उतरी थी, आज लौट गई!

[सब हठात् पिघल उठते हैं। कलावती हा-हा करके अशोक से लिपट जाती है। जगवन्ती उसे सम्हालती है]

दामोदरस्वरूप—(सहसा जा कर) क्या करती हो कलावती! रोती हो! अशोक ने कहा था रोना मत, और तुम अशोक की

बात टालती हो।

[कलावती नहीं सुनती। उसकी छाती फट गई है। उसकी वाणी कमरे की दीवारो को कँपा देती है। सब सोये हुए से उठते हैं। अमृतराम बाहर निकल जाते हैं।]

कलावती—(बिलखती हुई) मैं माँ हूँ, माँ। मेरा सिर, मेरा मांस...

दामोदरस्वरूप—लेकिन मैं बाप हूँ। अशोक का बाप हूँ। अशोक वीर पुत्र था, मै वीर पुत्र का वीर बाप बनूँगा! सुनो यदु, रामदास, अनिता, अनवर, शमशेर, राजेन्द्र! तुम सब सुनो। मुझे अशोक पर गर्व है! मैं दुनिया को कहने का मौका न दूँगा कि अशोक जैसी महान् और दिव्य आत्मा का पिता दामोदरस्वरूप रोया था। मैं हँसूँगा!

[सचमुच दामोदरस्वरूप बड़े जोर से हँस पड़ता है।]

अनिता—(जोर से रो कर) पिताजी! पिताजी!!

दामोदरस्वरूप—(अनिता को छाती मे भर) अशोक की बहन हो कर रोती हो! तुझे अशोक चाहिये न? देख कितने अशोक हैं। यदु अनवर आदि-आदि सब तेरे अशोक हैं। और अनिता यह अखंड भारत अनेक अशोको से भरा पड़ा है, फिर तू क्यों रोती है।

[दामोदरस्वरूप फिर हँस पड़ते हैं। सब युवक हतप्रभ उस दुबले-पतले अधेड़ पुरुष के साहस को देखते हैं। सहसा यदु आगे बढ़ कर कलावती को उठा लेता है।]

यदुनाथ—माँ, तुम हम सब की माँ हो! हमे आशिर्वाद दो

माँ! भारत के समस्त पुत्र अशोक के पद-चिह्न पर चल सकें।

शमशेर, रामदास, अनिता और अनवर—(एक साथ बोलते हैं) माँ! हम मानव रक्त को व्यर्थ न जाने देंगे।

माँ! मानव रक्त से हम नई मानवता को जन्म देंगे।

माँ! हम सारे हिन्दुस्तान मे अशोक ही अशोक पैदा कर देंगे।

माँ! तुम नये हिन्दुस्तान की माँ हो।

[सहसा कलावती उठ कर उन्हें देखती है, उसकी आँखें चमक उठती हैं। दामोदरस्वरूप धीरे-धीरे अशोक के बालों में उँगली फेरते हैं। अमृतराम अन्दर आते हैं।]

अमृतराम—बाहर अपार जनता है यदु! अशोक को ले चलो।

दामोदरस्वरूप—(उठ कर) चलिए डाक्टर साहब, हम तैयार हैं।

[और वे स्थिरगति से बाहर चले जाते हैं। उन्होंने कुहनी उठा कर आँखें पोंछ ली हैं। रामदास उनके पीछे जाता है। उनकी आँखें गीली हैं।]

[पर्दा गिर जाता है]

मानव-मन

(सेठ गोविन्ददास)

पात्र

पद्मा ...२१, २२ वर्ष की एक पतिपरायणा युवती

भारती ...पद्मा की पड़ोसिन, एक विधवा स्त्री

कृष्णावल्लभ . पद्मा के पति

मुनीम, समाधानी

उपक्रम

स्थान—कृष्णावल्लभ के मकान के बरामदा

समय—प्रातःकाल

[बरामदा आधुनिक ढंग का है और उसी तरह सजा भी है। पीछे की दीवाल दीखती है और दो तरफ खंभों पर डाटें। दीवाल गुलाबी रंग से रँगी है। उसपर श्रीनाथ जी, यमुना जी और श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं के चित्र टँगे हैं। डाटों में से बगीचे का कुछ हिस्सा दिखाई देता है जो उगते हुए सूर्य के प्रकाश से रँग रहा है। बरामदे के सीलिंग से बिजली की बत्तियाँ झूल रही हैं और जमीन पर, जो संग-मरमर से पटी है, अनेक सोफे, कुर्सियाँ और टेबिलें सजी हैं। एक कुर्सी

पर पद्मा बैठी हुई है और अपने सामने की टेबिल पर रखी हुई एक खुली चिट्ठी ध्यान से पढ रही है। पद्मा करीब २१-२२ साल की साधारण कद और सुडौल शरीर की सुन्दरी स्त्री है। रंग गोरा है। रेशमी साड़ी ब्लाउज और रत्न-जटित आभूषण पहने है। मस्तक पर लाल टिकली है। और उसी के नीचे दोनों भवों के बीच में श्रीनाथ जी का पीला चरणामृत लगा है। भारती का प्रवेश। उसकी अवस्था करीब ४० वर्ष की है। वह लबे कद की दुबली पतली साधारण तथा सुन्दर स्त्री है। रंग गेहुँआ है। सूती साडी और शलूका पहने है। वेशभूषा से विधवा जान पड़ती है।]

भारती—(पद्मा के निकट आते हुए) बड़े ध्यान से क्या पढ़ रही हो बहन ?

पद्मा—(चौंक कर) ओ भारती बहन, (खड़े हो कर) आओ बैठो बहन !

[भारती और पद्मा दोनों कुर्सियों पर बैठ जाती हैं।]

भारती—क्या पढ़ रही थीं !

पद्मा—उनकी चिट्ठी आई है।

भारती—तभी इतनी ध्यानावस्थित थी कि मेरी बोली सुन कर भी चौंक पडी।

पद्मा—उनका पत्र मुझे ध्यानावस्थित करने को काफी है, यह मैं जानती हूँ, पर ध्यान-मग्न होने का एक और भी सबब था।

भारती—क्या ?

पद्मा—उस पत्र के समाचार।

भारती—क्यों, उनके मित्र की तबीयत कैसी है ?

पद्मा—वैसी ही है, क्षय ऐसी बीमारी नहीं, जो जल्दी अच्छी हो जाय, या बिगड़ जाय।

भारती—फिर वहाँ से और क्या समाचार आ सकते हैं ?

पद्मा—सुन लो, पत्र ही सुना देती हूँ। (पत्र उठा कर पढते हुए) "तुम्हे यहाँ का हाल पढ़ कर आश्चर्य हो सकता है, पर इस ज़माने मे इस तरह की चीज़े कोई ताज्जुब की बात नही है ··"

भारती—किस तरह की चीज़ें ?

पद्मा—वही तो पढ़ती हूँ, सुनो (पत्र पढते हुए) "इस दफ़ा भाभी जी का विचित्र किस्सा है। बृजमोहन की तबीयत वैसी ही होते हुए भी, उनके पलँग पर पड़े रहने पर भी, इधर-उधर हिलने-डुलने की ताकत न होने पर भी, भाभी जी का पुराना प्रोग्राम फिर लौट आया है। नित्य प्रातःकाल एक घंटा टब और शावर बाथ मे लगता है। फिर बाल सँवारने, पाउडर लगाने, लिपस्टिक और नेल पेंट को काम मे लेने मे काफी वक्त लग जाता है। रोज़ नई साड़ी और ब्लाउज़ पहना जाता है। हर दिन शाम का समय क्लब में जाता है और अगर किसी दिन गार्डन पार्टी या डिनर या डांस का न्योता आ गया तब तो रात को भी लौटने का कोई निश्चित वक्त नहीं रहता। बृजमोहन को सम्हालते हैं डाक्टर और जहाँ तक भाभी का सम्बन्ध है वहाँ तक एक दफ़ा बृजमोहन की तबीयत पूछ लेने से उनके कर्तव्य की समाप्ति हो जाती है।" (पत्र टेबिल पर रख कर भारती की तरफ देखते हुए) कहो बहन, पत्र के समाचार ध्यानावस्थित कर देने के लायक हैं या नहीं ?

ताज्जुब होता है। (कुछ ठहर कर) तुम्हे इससे अचम्भा नहीं होता बहन ?

भारती—(गम्भीरता से) नहीं।

पद्मा—नहीं ?

भारती—नही बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है।

पद्मा—बरदाश्त करने की हद होती है ?

भारती—ज़रूर। सहन-शक्ति सीमा-रहित नही है।

पद्मा—ऐसे मामलों मे भी ?

भारती—हरेक मामले मे।

पद्मा—क्या कहती हो बहन, क्या कहती हो ? पति बीमार हो, खाट पर पड़ा हो, उठने-बैठने हिलने-डुलने की ताकत न हो और पत्नी इस तरह की वेश-भूषा करे, इस तरह के गुलछर्रे उड़ाये ! कहाँ गया भाभीजी का उनके प्रति प्रेम ? कहाँ गई भाभीजी की उनकी वह सेवा जो बीमारी के शुरू में थी ?

भारती—तुम्हारी भाभीजी दो वर्षों तक इस तरह अपनी ज़िन्दगी नही बिता सकती थीं, जिस तरह उन्होंने बृजमोहनजी की बीमारी के शुरू मे बिताना आरम्भ किया था।

पद्मा—तब तो शायद वे यह चाहती होंगी कि बृजमोहन जी का बृजमोहन जी का जीवन ही ··जीवन ही समाप्त हो जाय ?

भारती—संभव है।

पद्मा—(उत्तेजना से) वह स्त्री नहीं, सुना बहन, सच्ची स्त्री नहीं। पति की बीमारी में, बीमार पति की सेवा में, दो वर्ष

नहीं अगर सारा जीवन भी बीत जाय तो स्त्री को रो धो कर नहीं, पर शांति से उसे बिता देना चाहिये।

भारती—यह कहना जितना सरल है, करना उतना कठिन है।

पद्मा—नई रोशनी की औरतों के लिए होगा जिन्हें न धर्म पर विश्वास है और न भगवान पर भरोसा, जिनके लिए विवाह धार्मिक संस्कार नहीं पर एक इकरारनामा है, जिनकी एक जीवन में ही एक नहीं अनेक शादियाँ हो सकती हैं, एक नहीं अनेक पति मिल सकते हैं।

भारती—मैं समझती हूँ सभी के लिए।

पद्मा—(ताने से) क्या अपने अनुभव से कहती हो ?

भारती—(गम्भीरता से) सोच सकती हो। (कुछ ठहर कर) बहन, मैं नई रोशनी की नहीं हूँ। विवाह को इकरारनामा न मान कर सच्चा धार्मिक संस्कार मानती हूँ। पति को अपना सर्वस्व मानती थी। जब उन्हें लकवा हुआ तब मैं खाना, पीना, नींद, आराम सब कुछ छोड़ कर उनकी सेवा मे दत्तचित्त हुई। उनकी बीमारी ही मेरी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न हो गई। वह मानसिक दशा बहुत दिन तक रही भी। वे तीन वर्ष तक बीमार रहे, पर आखिर मे मै ऊब उठी थी।

पद्मा—और तुम आखिर मे, आखिर मे यह भी चाहने लगी थीं कि उनका जीवन···उनका जीवन समाप्त हो जाय ?

भारती—(कुछ सोचते हुए) कह नहीं सकती, जब उनकी तकलीफ बहुत बढ़ी तब कई बार यह बात मन मे उठती थी कि

उन्हे इतनी तकलीफ न सहनी पड़े तो ही अच्छा है, सम्भव है यह बात यथार्थ मे उनके लिए न उठ कर अपने छुटकारे के लिए उठती हो। बहन, तुम्हारी भाभीजी भी बृजमोहनजी की बीमारी के शुरू मे यह कभी न चाहती होंगी कि उनका जीवन समाप्त हो जाय, उन्होने उनके अच्छे करने मे कोई बात उठा न रखी होगी, परन्तु जब उन्हे यह दीख पड़ने लगा होगा कि उनका अच्छा होना अब असम्भव है तब तब…

पद्मा—(क्रोध से) बहन, तह कुलटा होगी, वह व्यभिचारिणी होगी। किसी हालत मे, किसी भी परिस्थिति में, कोई हिन्दू स्त्री, कोई सच्ची हिन्दू पत्नी, अपने पति, अपने आराध्य-देव के संबंध मे ऐसी बात जाग्रत अवस्था मे तो क्या स्वप्न मे भी नहीं सोच सकती, चाहे उसका सारा जीवन नष्ट हो जाय, सारी ज़िन्दगी बर्बाद हो जाय।

भारती—बहन, तुम जो कहती हो वह आदर्श है। अपने सारे सुखो को तिलांजलि दे कर कोई स्त्री अगर अपने को पति में इस प्रकार विलीन कर सके, कोई प्रेमिका यदि अपने निजत्व को अपने प्रेमी को इस प्रकार समर्पण मे दे सके तो वह मानवी नहीं देवी है, वह मनुष्य नहीं देवता है; लेकिन बहन, 'यह मानव-मन…मानव-मन…मानव-मन।'

[दोनों गम्भीरता से एक दूसरी की तरफ देखती हैं।]

[यवनिका-पतन]

मुख्य दृश्य

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान में उसके सोने का कमरा

समय—दोपहर

[कमरे के तीनों तरफ की दीवालें दीखती हैं जो आसमानी रग से रँगी हुई हैं। पीछे की दीवाल में कई दरवाजे और खिड़कियाँ हैं, जिनमे उसके बाहर की बालकनी का कुछ भाग बगीचे के दरख्तों का ऊपरी हिस्सा तथा आकाश दिखाई देता है, जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमजिले पर है। दाहिनी तरफ की दीवाल में दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमे से एक दरवाजा खुला हुआ है। इससे स्नानागार का कुछ हिस्सा दिखाई देता है। बाई ओर की दीवाल में भी दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमें से भी एक ही दरवाजा खुला है, जिससे नीचे के जीने का कुछ भाग दीखता है। दीवाल पर श्रीनाथजी, यमुना जी और श्रीकृष्ण की लीलाओं के कई चित्र लगे हैं। कमरे की छत से बिजली की बत्तियाँ और एक सीलिंग फैन झूल रहा है। जमीन पर कालीन बिछा है, जिसके बीचों-बीच चाँदी के पायों का एक पलँग बिछा है। पलँग के पास ही एक टेबिल रखी है जिसपर दवा की शीशियाँ, थरमामीटर, एक टाइमपीस घड़ी और नोट-बुक इत्यादि रखी हैं। पलँग पर कृष्णवल्लभ रुग्ण अवस्था मे लेटा है। उसकी उम्र करीब ३० वर्ष की है। वह साधारण ऊँचाई और गोरे रग का व्यक्ति है, पर बीमारी के कारण अत्यन्त कृश हो गया है। मुख पर पीलापन और आँखों के चारों तरफ कालिमा आ गई है। सिर के बाल

अंग्रेजी ढग से कटे हैं और दाढी मूँछ मुँड़ी हुई हैं। वह गले तक एक ऊनी शाल ओढे हुए है। उसके नजदीक की एक कुर्सी पर पद्मा बैठी हुई है। पद्मा की वेश-भूषा एकदम सादी हो गई है। मस्तक की टिकली और उसके नीचे का चरणामृत उसी तरह लगा है जैसा उपक्रम मे था। उसके मुख पर शोक और चिन्ता का साम्राज्य छाया हुआ है।]

कृष्णवल्लभ—(खॉस कर) दो वर्ष हो गये न प्रिये! दो वर्ष पहले की इसी महीने की इसी तारीख को पहले-पहल बुखार आया था।

पद्मा—हॉ प्राणनाथ, दो वर्ष हो गये।

कृष्णवल्लभ—बृजमोहन दो वर्ष से कुछ ही ज्यादा तो बीमार रहा ?

पद्मा—आप न जाने क्या क्या सोचा करते हैं !

कृष्णवल्लभ—(फिर खॉसते हुए) क्यो प्यारी, यह कैसे न सोचूॅ ? जो क्षय उसे था वही मुझे है, और वहॉ से लौटने के थोड़े दिन बाद ही हो भी गया।

पद्मा—इससे क्या होता है, क्या इस बीमारी के रोगी अच्छे नहीं होते ?

कृष्णवल्लभ—बृजमोहन तो नहीं हुआ और मैं भी नहीं हो रहा हूॅ ?

पद्मा—आप हो जायेंगे।

कृष्णवल्लभ—अभी तुम्हे आशा है ? प्रिये, आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन मे ठूॅसने का बलात्कार करता है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा

कृष्णवल्लभ—तुमसे बोल कर, पुराने सुखों की याद कर जो थोड़ा सा आनन्द मिल जाता है, उसे भी खो दूँ ?

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ भी कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये एक बात जानती हो ?

पद्मा—क्या नाथ ?

कृष्णवल्लभ—मेरे मन मे जब जब यह उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिंच जाता है।

पद्मा—आपके मन मे ऐसी बात ही नहीं उठनी चाहिये।

कृष्णवल्लभ—उसे मैं न रोक सकता हूँ और न तुम। (खाँसता है, कुछ रुक कर) मैं तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ।

पद्मा—प्राणेश्वर, आप हमेशा आज्ञा दे सकते हैं।

कृष्णवल्लभ—पर तुम मानती कहाँ हो ?

पद्मा—मैं आपकी आज्ञा नहीं मानती ?

कृष्णवल्लभ—और बातो में मानती हो, पर एक मामले में नहीं।

पद्मा—किसमें ?

कृष्णवल्लभ—मेरे हृदय में जो कुछ उठता है उसे नहीं सुनतीं। हमेशा मेरी बात पूरी होने के पहले मुझे रोक देती है। नतीजा यह निकलता है कि कह सुन कर मन की निकाल लेने से जो शांति मिलती है उससे भी मैं वंचित रह जाता हूँ।

पद्मा—तो आपकी वाहियात बातें भी सुना करूँ, उन बातों के बीच में भी आपको न रोकूँ ?

कृष्णवल्लभ—प्रिये, तुम अनुमान नहीं करतीं, बीमार की कल्पनाओ का, तुम अनुभव नही कर सकतीं उस शांति का जो उन कल्पनाओ को अपने सबसे बड़े प्रेमी, अपने सर्वस्व के सामने व्यक्त करने में मिलती है।

पद्मा—(लबी साँस ले कर) अच्छी बात है हृदय पर पत्थर रख कर जो कुछ आप कहेगे अब सब कुछ सुन लिया करूँगी।

कृष्णवल्लभ—(कुछ ठहर कर) मैं तुम से कह रहा था कि जब जब मेरे मन मे यह उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिच जाता है। जानती हो किसका ?

पद्मा—बृजमोहन जी का होगा।

कृष्णवल्लभ—नही।

पद्मा—तब।

कृष्णवल्लभ—भाभी का।

पद्मा—(उत्तेजित हो कर) उस कुलटा का, उस पापिनी का, जिसने उनकी बीमारी मे भी अपने गुलछर्रे नही छोड़े, जिसने उनके मरते ही दूसरी शादी करने मे देर न की !

कृष्णवल्लभ—प्रिये, भाभी न कुलटा थी और न पापिनी।

पद्मा—उससे बड़ी कुलटा और उससे बड़ी पापिनी न मैंने देखी और न सुनी है।

कृष्णवल्लभ—पहले मैं भी ऐसा समझता था पर अब नहीं समझता।

पद्मा—तो अब आप उसे बड़ी साध्वी, बड़ी धर्मात्मा समझते हैं ?

कृष्णवल्लभ—कुलटा और पापिनी तो नहीं समझता (खाँसता है, कुछ रुक कर) एक बात और कहूँ ?

पद्मा—सब कुछ सुनने का तो मैंने वचन दे ही दिया है।

कृष्णवल्लभ—अगर तुम वैसी होतीं तो मुझे आज अपनी बीमारी का इतना दुख न होता।

पद्मा—(आँखों में आँसू भर कर) नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या कह रहे हैं ?

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर न दे कर खाँसने लगता है।
कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, कभी कभी मुझे अपने से ज्यादा 'तुम्हारी चिन्ता हो जाती है। जब जब मेरे मन में उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा, तब-तब मेरे जीने की इच्छा तो और प्रबल हो ही जाती है, तुम्हारे साथ भोगे हुए सुख भी याद आने लगते हैं, और उन्हे फिर से भोगने के लिए भी मैं अधीर हो उठता हूँ। तुम्हे छोड़ कर जाना पड़ेगा शायद इसीलिए जाने का मुझे इतना दुःख होता है। पर इन सब बातो के सिवा जिस चीज़ से मैं सबसे ज्यादा तलमला उठता हूँ, वह है तुम्हारी इस वक्त की अवस्था, मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा, इसकी कल्पना। काश, तुम भी भाभी के समान हो जाती तो मैं इस फ़िक्र से तो······

[कृष्णवल्लभ को खाँसी का जोर से एटैक होता है। खाँसते-खाँसते वह बैठ जाता है। पद्मा घबरा कर उसकी पीठ सहलाती है। कुछ देर में उसकी खाँसी रुकती है और वह एकदम थक कर लेट जाता है तथा आँखें बंद कर लेता है। जीने से चढ़ कर स्वच्छ वस्त्रों में एक मुनीम का प्रवेश।]

मुनीम—श्रीनाथद्वारे के समाधानी वहाँ से छप्पन भोग का निमन्त्रण और श्रीनाथ जी का बीड़ा ले कर पधारे हैं। यही सेवा में आना चाहते हैं।

कृष्णवल्लभ—(धीरे-धीरे) मेरे बड़े भाग्य ! ऐसे वक्त श्रीनाथ जी का बीडा ! उन्हे फौरन ले आइए, मुनीम जी !

मुनीम—जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

कृष्णवल्लभ—(धीरे-धीरे) श्रीनाथद्वारे मे छप्पन भोग हैं और मेरी बदकिस्मती तो देखो, मुझे ही दर्शन न होंगे इतना ही नहीं, तुम भी न जा सकोगी।

[मुनीम के साथ समाधानी का प्रवेश। समाधानी करीब ५० वर्ष का ठिगना और मोटा आदमी है। शरीर पर लबी बगलबडी पहने है। सिर पर उदयपुरी पाग बाँधे है और गले में दुपट्टा डाले है। उसके हाथों में एक लिफाफा और वल्लभकुली बीड़ा है। कृष्णवल्लभ उठने का प्रयत्न करता है। पद्मा उसे सहारा दे कर उठाती और पीछे तकिया लगा कर बैठाती है। वह समाधानी के हाथ जोड़ता है और खड़े हो कर पद्मा भी।]

समाधानी—(नजदीक आते हुए) आयुष्मान श्रीमान् ! सौभाग्य अचल होय श्रीमती !

[नजदीक पहुँच कर समाधानी अपने हाथ का लिफाफा और बीड़ा कृष्णवल्लभ के हाथों में देता है। कृष्णवल्लभ उन्हें सिर व आँखों से लगा कर हृदय से लगाता है और फिर टेबिल पर रख देता है। सब लोग कुर्सियों पर बैठते हैं।]

समाधानी—श्रीमान की अवस्था के समाचार सूँ महाराज श्री कूँ अत्यन्त खेद भयो। मोकूँ या हेतु पठायो है कि श्रीमान

कूँ आशीर्वाद सहित छप्पन्न भोग को निमन्त्रण देऊँ और निवेदन करूँ कि श्रीमान जी आगे सुधि करत हैं !

कृष्णवल्लभ—महाराज श्री के अनुग्रह के लिए कृतज्ञता के मेरे पास शब्द नहीं हैं समाधानी जी। मुझसे तो उस घर के अनगिनती वैष्णव हैं और इतने पर भी महाराज श्री की मेरे पर यह कृपा ! (खाँसता है और कुछ रुक कर) समाधानी जी, महाराज श्री की इस अनुकंपा से मुझे रोमांच हो रहा है !

समाधानी—आपके से अगणित वैष्णव ! क्या कहें हैं श्रीमान ? आपसे तो आप ही हैं !

कृष्णवल्लभ—(आँखों मे आँसू भर कर) कैसी मेरी बद-किस्मती कि जिस छप्पन भोग के दर्शन की अभिलाषा वर्षों से थी उसके मौके पर मेरा यह हाल है।

समाधानी—श्रीनाथ जी आपको शीघ्र स्वस्थ करिहैं। श्रीमान न पधार सकें तो श्रीमती जी।

कृष्णवल्लभ—(पद्मा की तरफ देख कर) ये···हाँ, ये जरूर जा सकती हैं। और अगर ये जायँ तो मुझे तो उससे जितनी खुशी होगी उतनी किसी दूसरी चीज से हो नहीं सकती। (कुछ खाँस कर) छप्पन भोग का क्या कार्यक्रम है, समाधानी जी ?

समाधानी—पहले वर्ष भर के उत्सव के मनोरथ होयँगे और अन्त मे प्रभु छप्पन भोग आरोगेंगे। (पद्मा से) श्रीमती जी, आप अवश्य पधारें। महाराज श्री ने आज्ञा करी है कि श्रीमान न पधार सकें तो आपके पधारवे सूँ महाराज श्री कूँ परम हर्ष होयगो। आप पधार कर श्रीमान के स्वस्थ होयवे प्रभु सन्निधान

में प्रार्थना करें ! श्रीनाथ जी श्रीमान कूँ शीघ्र ही स्वास्थ्य प्रदान करहिंगे।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—(मुनीम से) मुनीम जी, समाधानी जी थके माँदे आये हैं। आपको अतिथि-आलय मे अच्छी तरह ठहराइए। महाराज की आज्ञा पर हम लोग विचार करेंगे। (खाँसता है)

मुनीम—जैसी आज्ञा !

[मुनीम और समाधानी उठते हैं]

कृष्णवल्लभ—आज शाम को फिर दर्शन देने की कृपा कीजियेगा !

समाधानी—जैसे आज्ञा श्रीमान्।

[कृष्णवल्लभ और पद्मा हाथ जोड़ते हैं। समाधानी हाथ उठा कर आशीर्वाद देता है। मुनीम और सामाधानी का प्रस्थान। कृष्णवल्लभ खाँसता है और लेटने लगता है। पद्मा उठ कर टिकने के तकिये हटा उसे सहारा दे कर लेटाती और फिर कुर्सी पर बैठती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये !

पद्मा—प्राणनाथ !

कृष्णवल्लभ—तुम्हारी जाने की इच्छा है ?

पद्मा—आपको इस हालत में छोड़ कर ?

कृष्णवल्लभ—बहुत दिन का काम तो है नही।

पद्मा—लेकिन मैं तो एक मिनट के लिए भी आपको नहीं

छोड़ सकती।

कृष्णवल्लभ—प्राणप्यारी, अर्धकुम्भ पर जब हम हरिद्वार न जा सके थे तब हमने कुंभ पर जाने का निश्चय किया था। कुंभ के मौके पर ही मैं बीमार पड़ा। (खाँसता है, कुछ ठहर कर) तुम्हे बहुत समझाया, तुम नहीं गई। अब श्रीनाथ जी के छप्पन भोग का उत्सव है। हर दफा ऐसे मौके नहीं आते।

पद्मा—लेकिन प्राणनाथ, मैं आपको कैसे छोड़ सकती हूँ ?

कृष्णवल्लभ—डाक्टर दोनो वक्त आते हैं, तुम्हारी गैरहाजिरी मे नर्स का इंतजाम हो जायगा। श्रीनाथजी का छप्पन भोग है, प्राणप्यारी, महाराज श्री ने कृपा कर समाधानी के हाथ निमंत्रण भेजा है, श्रीनाथ जी ने सुधि ली है, महराज श्री ने आज्ञा दी है।

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। कृष्णवल्लभ खाँसता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—पंद्रह बीस दिन से ज्यादा नहीं लगेंगे प्रिये !

[पद्मा फिर भी कोई उत्तर नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की तरफ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, मेरी एक प्रार्थना मानोगी ?

पद्मा—फिर वही बात नाथ ! प्रार्थना ? आप आज्ञा दें।

कृष्णवल्लभ—(खाँस कर) तो मैं आज्ञा देता हूँ प्राणप्यारी, तुम जाओ; श्रीनाथद्वारे जरूर जाओ, जरूर।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। उसकी आँखों मे आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, श्रीनाथ जी के सन्निधान में मेरे स्वस्थ होने के लिए, अपने सौभाग्य के लिए, प्रार्थना...प्रार्थना करना,

प्राणप्यारी। (आँसू भर आते हैं।)

[पद्मा रो पड़ती है। कृष्णवल्लभ को फिर जोर से खाँसी का दौरा होता है।]

यवनिका-पतन

उपसंहार

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान का बरामदा

समय—सन्ध्या

[दृश्य वैसा ही है जैसा उपक्रम में था। उदय होते हुए सूर्य के स्थान पर डूबते हुए सूर्य की किरणें बाहर के उद्यान को रँग रही हैं। एक तरफ पद्मा के दो सूट केस, होल्ड आॅल, टिफिन कैरियर, सुराही इत्यादि सामान बँधा हुआ रखा है। पद्मा अपने सामान को देख रही है। उसने फिर से रेशमी साड़ी, ब्लाउज, रत्न-जटित आभूषण धारण कर लिये हैं। उसका मुख प्रसन्न तो नहीं कहा जा सकता लेकिन उसपर उस तरह का शोक और चिन्ता का साम्राज्य नहीं है, जैसा मुख्य दृश्य मे था। भविष्य के सुख की एक प्रकार की उत्कण्ठा उसके मुख पर दीख रही है। भारती का प्रवेश। वह वैसी ही दीखती है जैसी उपक्रम में थी।]

पद्मा—(भारती के आने की आहट पा कर उस तरफ देख तथा भारती को आते हुए देख कर उसी तरफ बढ़ते हुए) ओ, भारती बहन, आओ बैठो बहन !

[भारती और पद्मा दोनों कुर्सियों पर बैठ जाती हैं]

भारती—श्रीनाथद्वारे जा रही हो बहन ?

पद्मा—(दाहिनी तरफ़ से बगीचे की ओर देखते हुए) हाँ, वहाँ

छप्पन भोग का उत्सव है, वे मुझे भेज रहे हैं।

भारती—वे तुम्हे भेज कर बिलकुल ठीक काम कर रहे हैं और तुम जा कर भी सर्वथा उचित बात कर रही हो।

पद्मा—(भारती की तरफ देख कर) ऐसा ?

भारती—बिलकुल। छप्पन भोग के अवसर पर तो वल्लभ-कुल सम्प्रदाय मे वर्ष भर के सभी उत्सवो के मनोरथ होते हैं न ?

पद्मा—हाँ !

भारती—तुम्हें और कृष्णवल्लभ जी को वर्षा और वसंत बहुत प्रिय थे। श्रीनाथद्वारे में सावन का डिण्डोलोत्सव, वसंत का फूल-डोल, और भी अनेक उत्सवो के दर्शन, नित्यप्रति होने वाले रास और गायन आदि से दृश्येन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय को तृप्ति मिलेगी। महाप्रसाद से जिह्वा को शांति प्राप्त होगी। अधिकांश इन्द्रियाँ संतुष्ट हो जायँगी। हर तरह से मन बहलेगा। इहलोक परलोक दोनों सुधरेंगे।

पद्मा—(भर्राये हुए स्वर में) बहन···बहन···

भारती—बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है। सहन-शक्ति सीमारहित नहीं है। बीमार के साथ बिना किसी बीमारी के कोई बहुत दिन तक बीमार से भी बदतर हालत मे नहीं रह सकता। मृत के साथ जीवित अपने को मृत नही समझ सकता। आदर्श की बात दूसरी है। बहन, मानव···मानव-मन···यह मानव मन···।

[यवनिका पतन]

दस हज़ार

[श्री उदयशंकर भट्ट]

पात्र

बिसाखाराम	सीमा-प्रांत का एक सेठ
सुन्दरलाल	बिसाखाराम का लड़का
राजो	बिसाखाराम की लड़की
राजो की माँ	सेठ की पत्नी
मुनीम	बिसाखाराम का मुनीम

समय—शाम के पाँच बजे।

[सीमा-प्रान्त के एक नगर में एक मकान। मकान में एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दो दरवाजे हैं। एक सीढी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग मे जाता है। गली की तरफ दो खिड़कियाँ हैं। भीतर कमरे में एक बड़ी खाट है, जिसपर मैला सा बिस्तर बिछा है। पूर्व की तरफ कोने में एक चौकी है, उसके सामने आले में ठाकुर जी का एक सिंहासन है। उसमें कुछ पीतल की मूर्तियाँ हैं। उनपर गेंदे के फूल की माला चढी है। आले की कील में एक रुद्राक्ष की माला है। हाथ की लिखी हुई छोटी-छोटी दो किताबें हैं। कमरे में कुछ तस्वीरें हैं—एक रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है; हनुमान माला तोड़ रहे हैं। दूसरी तस्वीर काली की है। कमरे में एक मोढ़ा रखा है और एक टूटी हुई कुर्सी, जिसका बेंत टूटा

हुआ है। एक छोटी-सी मेज एक कोने में रखी है। उसपर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूँटियाँ गड़ी हुई हैं, उनमें एक पर पगड़ी और दूसरी पर एक दुपट्टा और एक मैला सा कोट है। खाट पर लाला बिसाखाराम बेचैन सा लेटा हुआ है। उसकी आँखों में बेचैनी है। चेहरा पिचका हुआ, रंग गोरा, बाल बिखरे हुए हैं। मालूम होता है बडी चिन्ता में है। हाथ में चिट्ठी है, जो बार-बार उठा कर पढता है, और फिर सिरहाने रख देता है। फिर उठा लेता है, पढ़ता है, और फिर रख देता है। उठ कर बैठ जाता है और छत की कड़ियों की ओर ताकता है और धम्म से फिर खाट पर लेट जाता है।]

बिसाखाराम—हाय, क्या जाना था, यह दिन भी देखना पड़ेगा! हे राम जी! उबारो महाराज! बड़ी बिथा आ पड़ी है। कोई—कोई उपाय सूझे नहीं है। (आँख मीच कर ठाकुर जी को हाथ जोड़ने लगता है, फिर आँखें खोल कर पत्र हाथ में ले कर पढ़ने लगता है) क्या करूँ? राजो, राजो री!

[भीतर के दरवाजे से १४ साल की एक लड़की दौड़ती हुई आती है।]

राजो—हाँ चाच्चाजी! क्या कहो हो?

बिसाखाराम—अरी, क्या अभी मुनीमजी नहीं आये? मरा जाऊँ हूँ। बड़ी मुसीबत है।

राजो—भाई जी कब आवेंगे भला? (एकदम पास आ कर) बुला लो न भाई को। कुछ रुपयो की ही तो बात है। हाय, (आँखों में आँसू भर कर) हे भगवान्, बड़े नामुराद हैं ये लोग! चाचाजी, भेज दो रुपया, क्या देखते हो?

बिसाखाराम—(खाट पर बैठ कर) क्या देखूँ हूँ बेटा! अपनी

क़िस्मत को रोऊँ हूँ। रुपया भी कहीं धरा है? अभी अनाज भी तो खरीदना है। कल मुहम्मद बकस आने रुपये का सूद दे कर दो हज़ार माँगने आया था, उसको भी तो देना ही है। दस हज़ार के सरकारी बौंड खरीदने हैं, ऐसा मौका कब मिलेगा? इतना सूद क्या छोड़ा जा सके है बेटी? ओः! दस हज़ार देने पड़ेंगे! (एक दम खाट पर धड़ाम से लेट जाता है)।

राजो—(दौड़ कर) चाचाजी, क्या हुआ तुम्हे? भाभी, ओ भाभी! देख तो चाच्चा को क्या हुआ है?

[राजो की माँ 'अरी आई' कहती हुई आती है]

राजो की माँ—कह तो दिया, परेशान होने की क्या ज़रूरत है? दे दो दस हज़ार। रुपये तो फिर भी मिलते रहेंगे। लड़का तो फिर' हा भगवान्, क्या कह रही हूँ! हे रामजी! (हाथ जोड़ कर आले में रखे सिंहासन की तरफ देखने लगती है) यो ही करे है! दया करो भगवान्!

बिसाखाराम—मुनीमजी नहीं आये? (आँख बन्द कर लेता है)

राजो—आते ही होंगे। तुम्हारा कैसा जी है चाच्चा?

राजो की माँ—कहूँ तो हूँ, फिकर क्यो करो हो? हे ईश्वर, मेरे लड़के को लौटा दो! मेरा सब कुछ ले लो। मेरे प्यारे बच्चे को मुझे दे दो भगवान्। (रोने लगती है।)

राजो—(माँ के गले से लिपट कर) रोवे क्यों है भाभी? चाचा से कह कर भाई को बुला ले न!

राजो की माँ—(आँसू पोंछती हुई) कैसे बुलाऊँ बेटी, तेरे चाचा को तो रुपये की पड़ी है। ईश्वर ने एक ही लड़का दिया…

हा भगवान !

बिसाखा०—(आँखें खोल कर) राजो, मुनीमजी नहीं आये बेटी?

राजो—अभी तो नहीं आये।

बिसाखाराम—न मालूम मुनीम ने खाँड का सौदा किया या नहीं? इस वख्त तो खाँड खरीदना ज़रूरी है। फिर महँगी हो जायगी। कैसी मुसीबत है। न जाने इबराहीम से रुपये का तकाज़ा किया या नहीं? आज चार साल होने आये, अभी तक सूद भी नहीं दिया। मुकदमा लड़ना पड़ेगा। तब कहीं जा कर वह बेईमान रुपया देगा। (पत्र हाथ मे ले कर) पर इसको क्या करूँ ?

['राजो, राजो' नाम ले कर मुनीम आवाज़ लगाता हुआ जीने में खट-खट चढ़ता आता है]

बिसाखाराम—लो, मुनीमजी, आ गये। (एक दम उठ कर बैठ जाता है) आओ, मुनीमजी, आज बड़ी देर लगाई।

[राजो और उसकी माँ दूसरे दरवाजे से घर में चली जाती हैं]

मुनीम—जै रामजी की सेठ जी! देर हो गई, दिन-भर का हिसाब-किताब करना था। तेरह आने के हिसाब से खाँड के सौ बोरे खरीद लिये हैं। मुहम्मद बकस का आदमी आया था। मैंने कह दिया, सेठजी के आने पर फैसला होगा। सुना है, इबराहीम फरार हो गया है। रोकड़ मिलाते इतनी देर हो गई है। हाँ, पठानो का कोई खत आया क्या ?

बिसाखाराम—खाँड तो बारह आने चार पाई थी न, फिर तेरह आने क्यो खरीदी ? इब्राहीम भाग गया क्या ? यह तो बड़ी बुरी खबर है मुनीमजी, चार हज़ार नकद हैं। कैसे छोड़े जा सकते हैं।

चौधरी से नहीं कहलवाया ? वह तो जामिन है न ! सरकारी बौंड की चिट्ठी आई ? रुपये तैयार रखना। बौंड तो खरीदने ही होंगे।

मुनीम—पठानो की तरफ से कोई चिट्ठी आई सेठजी ?

बिसाखा०—रोकड़ मे कितना बाकी है ? चौधरी के पास अभी आदमी भेजो और तकाज़ा करो। (खाट पर लेट कर) सब तरफ मुसीबत है। रुपया ले कर देने का कोई नाम नहीं लेता। (आँखें बन्द करके लेट जाता है) हा भगवान् ! हे रामजी ! कैसा बुरा समै है !

मुनीम—पठानो ने कुछ नही लिखा सेठजी ? सुन्दरलाल का खयाल करना ही चाहिये। न मालूम बिचारे को कैसी तकलीफ दे रहे होंगे। (सेठ की ओर देखता है)

बिसाखाराम—लो यह पढ़ो। कैसा दुष्ट है लड़का ! ज़रा भी लड़ाई नहीं करी। डोली मे नई बहू की तरह उनके साथ चला गया मेरी छाती पै मूँग दलने ! कहाँ से लाऊँ दस हज़ार ? दस हज़ार ! (चिट्ठी मुनीम के हाथ मे दे कर) लो पढ़ो, सब बरबाद कर दिया। भला बाहर गया ही क्यो ?

मुनीम—सेठजी, सुन्दरलाल का कोई अपराध नही है। उगराही को उसे आपही ने तो भेजा था।

[पत्र हाथ में ले कर पढने लगता है]

बिसाखाराम—बरबाद हो गया मै तो मुनीमजी ! हाँ, जरा ज़ोर से पढ़ो।

मुनीम—(चौंक कर) हैं ! यह तो सुन्दरलाल की ही लिखावट है ! लिखता है—'पिताजी, अगर मेरी जिन्दगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ खैबर फाटक के बाहर आज शाम के

ठीक आठ बजे दस हज़ार रुपया पहुँचा दो! पुलिस को या और कोई सहायक ले कर आये तो खान कहता है, मुझ को मरा ही समझो। इन लोगो ने मुझे बड़ी तकलीफ दी है। शायद नरक की कोई भी यातना इससे अधिक नही हो सकती। मुझे विश्वास है, आप मेरी रक्षा करेंगे।

आपका पुत्र,
सुन्दरलाल।'

नीचे खान ने खुद पश्तो मे लिखा है—

'अम तुमको इत्तला देता है, तुम आज बुधवार शाम के आठ बजे दस हज़ार रुपया खैबर फाटक के बाहर पहुँचा दे, नही तो तुम्हारा लड़का को मार डालेगा।

अमीरअली खाँ।'

[मुनीम पत्र रख कर बिसाखाराम की ओर देखने लगता है]

मुनीम—सेठजी, दस हज़ार की क्या बात है। आज ही तो बुधवार है। अगर कहे तो मुहम्मद बकस को न दे कर दस हज़ार का इन्तज़ाम कर लूँ। रुपया तो है ही।

बिसाखाराम—(उठ कर) आने रुपये का सूद है मुनीमजी! दस हज़ार यों ही जायँगे! हे भगवान् कंगाल कर दिया!

[राजो और उसकी माँ एक दम कमरे मे आ जाती हैं]

राजो की माँ—यों ही जायँगे, सुना तुमने मुनीमजी? इनकी अकल पर तो पत्थर पड़ गये हैं। कुछ नहीं सोचते। बस, रुपया, रुपया! मेरा लड़का ला दो मुनीम जी! हाय मेरा सुन्दर! हाय मेरा बच्चा रे!

[घूँघट किये जमीन पर बैठ जाती है। राजो दौड़ कर पिता से लिपट जाती है और निहोरे के ढंग से उसे देखने लगती है।]

बिसाखाराम—भला मुनीमजी ! मैं क्या कहूँ हूँ कि सुन्दर न आवे ? मैं तो खुद चाहूँ कि लड़का किसी तरह आ जावे। मैं क्या सुन्दर का बाप नहीं हूँ ? तुम्हीं बताओ ! लड़के के बिना तो घर सूना-सूना सा लगे है।

मुनीम—(सिर हिला कर) हाँ सो तो है ही।

राजो की माँ—आज सवेरे से मैं इनका रूप देख रही हूँ। कहूँ हूँ रुपये के पीछे लड़के को हाथ से न खोओ, रुपया तो हाथ का मैल है। दस हजार क्या बड़ी बात है। पर इन्हे तो न जाने क्या हो गया है। खाँड और सूद से इनका विचार छूटे तब न ! मुनीम जी, मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ हूँ मेरे सुन्दर को ला दो।

मुनीम—माता जी, घबराओ मत, सुन्दर को घर पर ही समझो।

राजो की माँ—घर पर कैसे समझूँ मुनीमजी, घबराऊँ क्यों नहीं ? इनकी (पति की ओर इशारा करके) हालत देख कर तो मेरे जी मे ऐसा हो रहा है कि मैं लड़का खो बैठूँगी। कहते हैं, जो होना था, सो हो गया। और लड़का···हाय ! न मालूम इनसे यह कैसे ऐसा कहा गया ! हे भगवान् !

राजो—मुनीमजी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो। देखो, कई रातों से माँ सोई नहीं हैं। सारी-सारी रात रोती रही हैं। आँखें सूज गई हैं। मेरे भाई को जल्दी ले आओ, मुनीम जी !

[रोने लगती है]

राजो की माँ—मैं कहूँ हूँ मेरा गहना ले कर बेच दो और मेरे लड़के को बचा लो।

मुनीम—घबराने की क्या बात है माताजी, सेठ जी को भी तो आपसे कम फिकर नही है।

बिसाखाराम—हाँ सो तो है ही। मैं भी कब सोया हूँ रात मे। दिन-रात चिन्ता लगी रहती है। सुन्दर मेरी आँखों के सामने झूमता रहे है। उसके बचपन की बातें याद आया करे हैं। इधर इबराहीम रुपया देने मे ही नही आवे। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीम जी, कितना बने है उसके ऊपर ? खाँड कहाँ रखवाई है, गोदाम मे न ? देखो, तालियाँ अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम—सेठजी, सुन्दरलाल के लिए क्या हुक्म है ? रुपये का इंतजाम करूँ ? बहुत थोड़ा वक्त है। (सेठ की ओर देखता है) पंद्रह हज़ार तिजोरी मे अभी रख कर आया हूँ।

बिसाखाराम—दस हज़ार ! न कम न थोड़ा। अरे और कोई इन्तजाम नही हो सके है मुनीमजी ! पुलिस को खबर क्यो न कर दो।

मुनीम—पुलिस भी क्या कर लेगी सेठजी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नहीं है, पर वह करे तब तो ! सेठजी, मैं तो आपको सलाह न दूँगा कि आप और इन्तज़ाम करें। नही तो आप लड़के से हाथ धो बैठेंगे। न करे ईश्वर !

राजो की माँ—तुम किस संसै मे पड़े हो मुनीमजी ? मेरा गहना ले जाओ। (उतार कर सामने रख देती है) लो, मेरे लड़के

को ला दो। चलो, मै भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

बिसाखाराम—क्यो सब मेरे प्राण खाये जाओ हो ? गहना भी कौन घर का नही है ?

मुनीम—सेठजी ! देर हो रही है, हुक्म दो।

राजो की माँ—कह तो रही हूँ, यह ले जाओ। पठानो को दे देना।

बिसाखाराम—क्या करूँ मै फिर ? मुनीमजी ! अलीबकस अपने गहने छुड़ा ले गया क्या ?

मुनीम—देर हो रही है सेठजी ! खैबर फाटक तक पहुँचना है, क्या हुक्म है ?

[बिसाखाराम दस हजार का ख्याल आते ही फिर बेसुध-सा हो कर लेट जाता है]

मुनीम—क्या आज्ञा है सेठजी ? इसलिए जल्दी कर रहा हूँ कि दुकान से कुछ आदमी साथ ले लूँगा।

राजो की माँ—अरे बोल तो दो ! न बोलो ! मुनीम जी, (अकड़ कर) ले जाओ रुपया। मैं क्या घर की, दुकान की, कोई भी नही हूँ ? जाओ देर न करो। हे भगवान् !

मुनीम—जो हुक्म। (चला जाता है)

राजो—(माँ से) अब भाई आ जायगा माँ ?

माँ—हाँ बेटी, लेने गये हैं मुनीम जी। भगवान का नाम ले, सुन्दर राजी-खुशी घर लौटे।

बिसाखाराम—(एकदम चेतन सा हो कर) मुनीमजी गये ?

राजो—हाँ गये चाचा जी !

बिसाखा०—घर बरबाद कर डाला। क्या से क्या हो गया! लड़का कपूत निकला। हाय! कैसे मैंने पैसा कमाया। दस हज़ार! हाय राम! (फिर लेट जाता है) अरी राजो की माँ, मैं मरा!

राजो की माँ—कहूँ हूँ कौन बड़ी रकम है। घर बच्चा आ जाय तो और हो जायँगे रुपये। परमात्मा ने सब कुछ तो ''हे भगवान् दया करो। तुम इतनी चिता क्यो करो हो?

बिसाखाराम—चिता न करूँ? (बैठ कर) खून की कमाई है, खून की! आज चालीस साल से लगातार दिन रात एक करके रुपया कमाया है। (लेट जाता है)

राजो की माँ—कमाया है तो क्या फायदा। न तीरथ, न जप-तप, न व्रत। कभी हरिद्वार भी न ले गये। मै तो तुम्हारा पैसा जानती ही नही। चार कोठियाँ है और हम इसी गली मे पड़े सड़ रहे है। आज तीन-चार लाख रुपये के मालिक हो। एक पैसा भी कभी दान नही किया। ऐसा रुपया किस काम का?

बिसाखाराम—(उठ कर) आग लगा दे घर मे! मुझे क्या? मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नही दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (लेट जाता है) दस हज़ार रुपया इस नालायक के ' मुनीम कहाँ गया है राजो?

राजो की माँ—और रुपया होता ही किस लिए है? इसमे सुन्दर का क्या अपराध है भला?

बिसाखाराम—मुनीम कहाँ गया? शायद उगराही करने गया होगा। हे रामजी, दया करो। (लेट जाता है)

[सुन्दरलाल और मुनीम का प्रवेश। राजो की माँ सुन्दरलाल

को देख कर फूट-फूट कर रोने लगती है। राजो भाई से लिपट जाती है। लड़का दौड कर पहले बिसाखाराम, फिर अपनी माँ के पैर छूता है]

बिसाखा०—(पुत्र को देख कर) आ गया रे! बडी खुशी हुई।

राजो की माँ—आज बेटे को देख कर छाती ठंढी हुई। (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखो के तारे!

राजो—मेरे भैया! (उसके गले से लिपट जाती है)

राजो की माँ—कैसा दुबला हो गया इतने ही दिन मे!

सुन्दरलाल—हाँ माँ! भगवान् इन राक्षसो के पंजे मे न डाले। देख, मार मार कर तमाम देह सुजा दी है। (देह दिखा कर) हड्डी-हड्डी दुख रही है।

बिसाखाराम—बड़ा अच्छा हुआ बेटा! कैसे आये? क्या वैसे ही उन्होंने छोड़ दिया? मुनीमजी! आज उगराही मे क्या मिला?

सुन्दरलाल—(मुनीमजी की ओर देख कर) दस हजार रुपये दिये थे न?

मुनीम—(घबरा कर) हाँ, सेठानी जी ने हुक्म दिया था।

बिसाखाराम—क्या पूरे दस हज़ार!

[एकदम धड़ाम से तकिये पर गिर पड़ता है। सुन्दरलाल, मुनीम, राजो बिसाखाराम की ओर देखते हैं]

राजो की माँ—(सुन्दरलाल को थपथपाती हुई) इन्हे नीद आ गई है बेटा, आओ चलें।

[पर्दा गिरता है]

मैं—और केवल मैं

(श्री भगवतीचरण वर्मा)

पात्र

टॉमसन—अफ़सर

रामेश्वर, कृष्णचन्द्र, परमानन्द, बेनीशंकर, देवनारायण, श्यामलाल, खन्ना आदि—आफ़िस के कर्मचारी

मँहगू—चपरासी

[एक बड़े दफ्तर का आराम का कमरा । सामने वाली दीवार से मिली हुई दो आलमारियाँ रखी हैं जिनमे किताबें हैं। दोनों आलमारियों के बीच एक खिड़की है। खिडकी के ऊपर एक घड़ी लगी है, जिसमे एक बज रहा है।

दाहिनी ओर एक दरवाजा है और उसके अगल-बगल दो खिड़कियाँ हैं। बाईं ओर दो दरवाजे हैं। कमरे के बीचोंबीच एक लम्बी मेज पडी है, जिसके चारों ओर कुर्सियाँ रखी हुई हैं। दो-एक आराम-कुरसियाँ भी इधर-उधर पड़ी हैं।

रामेश्वर बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। उसका सर झुका हुआ है, मानो वह किसी गहरे विचार मे मग्न हो।

कृष्णचन्द्र दरवाजे से कहता है—]

कृष्णचन्द्र—कहो जी रामेश्वर, क्या हाल है ?

[रामेश्वर कोई जवाब नहीं देता। कृष्णचन्द्र उसके पास आता है और कुरसी पर बैठ जाता है। जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट सुलगाता हुआ।]

कृष्णचन्द्र—क्यो जी, क्या बात है, आज बड़े सुस्त दीख रहे हो ?

रामेश्वर—हाँ, बीबी को तबीयत बहुत ज्यादा गिर गई, डाक्टरो ने जवाब दे दिया और आज सुबह से मेरी तबीयत भी कुछ भारी है।

कृष्णचन्द्र—अरे भाई, यह तो बुरी खबर सुनाई और सुना—खन्ना साहब ने एक नया गुल खिलाया।

[रामेश्वर कोई जवाब नहीं देता—वह केवल कृष्णचन्द्र को गौर से देखता है।]

कृष्णचन्द्र—उस साले को निकलवा के न छोडा, तो मेरा नाम कृष्णचन्द्र नहीं ! मिस्टर टॉमसन को बस मे क्या कर रखा है अपने को लाट साहब समझने लगा है। लेकिन बच्चा को अभी यह पता नहीं कि कैसे आदमी से पाला पड़ा है !

रामेश्वर—हूँ ! (गरदन नीची कर लेता है। और एक ठढी सॉस लेता है।)

[बेनीशंकर का प्रवेश। दरवाजे से कहते हुए आते हैं—]

बेनीशंकर—काम करते-करते तबीयत झक हुई जाती है। दिन-रात गधे की तरह जुत कर काम करता हूँ, लेकिन कोई पूछने वाला नहीं !

[बेनीशंकर आ कर कृष्णचन्द्र की बगल में बैठ जाता है।
रामेश्वर की ओर देखता है, फिर पूछता है—]

बेनीशंकर—अरे रामेश्वर, आज चेहरा बड़ा उतरा हुआ है!

रामेश्वर—क्या बताऊँ, आज सुबह से तबीयत भारी है। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।

कृष्णचन्द्र—डाक्टर को क्यो नही दिखलाते?

रामेश्वर—हाँ, दो एक दिन मे जाऊँगा। आज महीना भर से कुछ न कुछ शिकायत चली ही जाती है।

[जिस समय रामेश्वर अपनी बात कहता है, कृष्णचन्द्र बेनीशकर
की ओर देखता हुआ कहता है—]

कृष्णचन्द्र—कहो जी, खन्ना से कैसी निपटी?

बेनीशंकर—अरे निपटी कैसी? मैं कोई दबने वाला थोड़े ही हूँ। कस के काम करता हूँ और दुनिया को ठेंगे पर मारता हूँ।

रामेश्वर—पूरा एक महीना—और बीबी को डाक्टरो ने जवाब दे दिया! और एक दूधपीता बच्चा!

[रामेश्वर की बात कोई नहीं सुनता।]

कृष्णचन्द्र—लेकिन साला है बदमाश! मैं कहता हूँ बेनीशंकर, जब तक यह आदमी यहाँ है तब तक हम लोग कोई सुख-चैन से नही रह सकते।

बेनीशंकर—(मुसकराता हुआ) बड़ी जल्दी टिकट कटने वाला है।

रामेश्वर—(कृष्णचन्द्र से) भाई, तुम्हारे बहनोई तो बड़े मशहूर डाक्टर हैं! ज़रा मैं उन्हे दिखलाना चाहता हूँ।

कृष्णचन्द्र—हाँ-हाँ चलना। (बेनीशंकर की तरफ़ घूम पड़ता है) न जाने कब से सुन रहा हूँ, लेकिन देखता हूँ, वैसा ही डटा हुआ है, टस-से-मस नहीं होता। उस्ताद, अगर बीबी-बच्चों का ख्याल न होता तो फिर मैं बतलाता!

[देवनारायण का प्रवेश। चुपचाप आ कर रामेश्वर के पास बैठ जाता है। बेनीशकर देवनारायण की ओर घूमता है।]

बेनीशंकर—कहो जी देवनारायण, कोई नई खबर?

देवनारायण—जनाब, आज टॉमसन साहब ने मिस्टर खन्ना को बहुत डाँटा। मैं बैठा हुआ सुन रहा था, खन्ना साहब की घिग्घी बँध गई, जवाब तक न देते बना!

कृष्णचन्द्र—क्या कहा? तो बात यहाँ तक पहुँच गई—वह मारा!

[रामेश्वर तीनों को एक बार गौर से देखता है—
उसके बाद कृष्णचन्द्र से]

रामेश्वर—भाई कृष्णचन्द्र, तो आज शाम को चलोगे न?

[कृष्णचन्द्र इस प्रश्न का जवाब न दे कर रामेश्वर से कहता है।]

कृष्णचन्द्र—क्यो जी रामेश्वर, टॉमसन साहब तुमसे तो बड़े ख़ुश हैं। तुम उन्हे क्यो नहीं सुझाते कि वह खन्ना को अलग करें। हम उनकी जगह तुम्हारा नाम पेश करेंगे।

[रामेश्वर सिर्फ तीनों को देख कर एक ठंढी साँस लेता है।]

देवनारायण—अरे, तुम इतने उदास क्यो हो? रामेश्वर, तबीयत तो ठीक है?

बेनीशंकर—नही, आज सुबह से इनकी तबीयत कुछ खराब है।

देवनारायण—तो छुट्टी क्यो नहीं ले लेते ? म्याँ घर पर आराम करो जा कर।

कृष्णचन्द्र—तो रामेश्वर सुना न ! इस वक्त मौका है और अगर अब चूके तो सब खत्म हो जायगा। जानते हो, खन्ना तुम्हे निकलवाने पर तुला हुआ है ?

रामेश्वर—होगा ! लेकिन मैं क्यो कोई ऐसा काम करूँ, दूसरे का अनिष्ट मुझसे न होगा। हाँ कृष्णचन्द्र, बतलाया नही, कल सुबह ले चलोगे, मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ ?

कृष्णचन्द्र—अरे यार आ जाना। (बेनीशकर से) परमानन्द ही इस मौके का फायदा उठा सकता है।

बेनीशंकर—हाँ यार, ठीक कहा। चलो उसके यहाँ चले।

[कृष्णचन्द्र और बेनीशकर उठ कर जाते हैं।]

रामेश्वर—(कृष्णचन्द्र से) अच्छा तो कृष्णचन्द्र, कल सुबह सात बजे मैं ··

[कृष्णचन्द्र और बेनीशकर कमरे से बाहर चले जाते हैं।]

देवनारायण—(मुसकराता हुआ) चले गये—बिना तुम्हारी बात सुने चले गये ! यह दुनियाँ काफी मजेदार है। है न ?

रामेश्वर—क्या कहा ?

देवनारायण—(दरवाजे की तरफ देखता हुआ) और दुनिया ठीक ही करती है। तुम्हारी बात को सुनने वाला कौन है ? फिर तुम्हारी बात दुनिया मे कोई सुने ही क्यो ?

रामेश्वर—देवनारायण ! हृदय की पीड़ा को प्रकट करना क्या कोई पाप है ?

देवनारायण—हाँ, है। तुममे और तुम्हारी पीडा मे किसी को कोई दिलचस्पी नही। जब तक तुम दूसरे से उसके हित की बात कहते हो, वह तुमसे मिल कर प्रसन्न होगा, तुम्हारे साथ हँसे-बोलेगा और जहाँ तुम उससे अपने सुख-दुख की बात करने लगते हो, उसका जी ऊब जाता है। तुम्हारे सुख से उसे कोई मतलब नही, तुम्हारे दुःख की उसे परवाह नही।

रामेश्वर—देवनारायण, तुम क्या कह रहे हो? दुनिया मे मानवता नाम की भी कोई चीज है।

देवनारायण—मानवता! हा-हा-हा! जिसे तुम मानवता कहते हो वह ढकोसला है—छल है। जो मानवता है, वह बड़ी कुरूप चीज़ है रामेश्वर! मानवता के माने है एक दूसरे को खा जाना, मानवता के माने हैं स्वयम् सुखी बनने के लिए दूसरे को दुखी बनाना। विजय—दूसरों पर विजय, दूसरो की गुलामी…यही मानवता है।

[रामेश्वर एक ठंढी साँस ले कर देवनारायण की ओर देखता है।]

रामेश्वर—तुम जो कुछ कह रहे हो वह मेरी समझ मे नही आ रहा है देवनारायण, जानते हो—घर में पत्नी मरणासन्न पड़ी है और अबोध बच्चा बिना ममता के प्यार के, धूल मे फिसल रहा है, और मैं निराश टूटा हुआ यहाँ बैठा हूँ। देवनारायण, क्या करूँ?

देवनारायण—मैं क्या बताऊँ? यह बला तुम्हारी है, तुम्हीं भुगतो, और उफ मत करो। आखिर अपनी मुसीबतों को बयान करने से तुम्हे क्या मिल जायगा? सहायता? नहीं, दुनिया मे कोई नहीं है, जिसके ऊपर मुसीबतें न हो और जो सहायता न

चाहता हो। सहानुभूति ? वह निरी मौखिक वस्तु है—बिलकुल धोखे की चीज़ है। सिवा इसके कि तुम लोगों के हृदय पर एक भार बनो—वसन्त ऋतु को तुषार की तरह झुलस दो, हँसी की दुनिया मे एक कर्कश चीख की तरह उठ पड़ो—तुम्हारा दूसरो से अपने दुःख को कहना कोई अर्थ नही रखता! समझे! अब मैं चला!

[देवनारायण उठ कर चल देता है। रामेश्वर देवनारायण को जाते हुए देखता है—उसके माथे पर बल पड जाते हैं।]

रामेश्वर—हूँ, इतनी खुदी, इतनी उपेक्षा!

[कृष्णचन्द्र, बेनीशकर और परमानन्द का प्रवेश]

बेनीशंकर—(रामेश्वर से) क्यों जी रामेश्वर, देवनारायण कहाँ गये ?

[रामेश्वर कोई उत्तर नहीं देता। सब लोग बैठ जाते हैं। परमानन्द रामेश्वर को गौर से देखता है।]

परमानन्द—अरे रामेश्वर, क्या मामला है ? तुम्हारी आँखो मे आँसू भरे हैं !

बेनीशंकर—अरे क्या लड़कियो की तरह रो रहे हो ? वीर बनो !

कृष्णचन्द्र—देखा परमानन्द तैयार है; इस खन्ना का समय आ गया, अब बच नही सकता। हाँ परमानन्द, मिस्टर टॉमसन अब लंच से लौट कर आ गये होंगे। यही वक्त ठीक होगा।

परमानन्द—भाई रामेश्वर को क्यों नहीं राजी करते—रामेश्वर, अगर केवल एक दफे तुम मिस्टर टॉमसन से मिल लेते,

केवल एक दफे तो सब काम बन जाता!

रामेश्वर—कौन काम?

परमानन्द—यही खन्नावाला। आज ही सब फैसला हो जाता।

रामेश्वर—मुझे क्षमा करो परमानन्द! मैं खन्ना के खिलाफ कोई काम न करूँगा। खन्ना के खिलाफ ही क्यो—किसी के खिलाफ नही।

बेनीशंकर—हॉ जनाब! खन्ना साहब की नजर मे चढ़ना चाहते हैं। म्याॅ यह ढोग कब तक चलेगा?

रामेश्वर—(कडी आवाज मे) क्या कहा?

कृष्णचन्द्र—(बेनीशकर से) चलो जी, इनकी तबीयत ठीक नही है। हम लोग चलते हैं। हॉ, देवनारायण को साथ ले लेना चाहिये। वह है कहॉ?

[सब लोग जाते हैं]

रामेश्वर—ये लोग दूसरे को मिटाने पर तुले हुए हैं, आखिर क्यों?

[महॅगू चपरासी का प्रवेश]

महॅगू—सरकार, डाक मेज़ पर रखी है। (रामेश्वर को गौर से देखता है।) अरे सरकार, आज बहुत उदास हैं, तबियत तो ठीक है?

रामेश्वर—नहीं महॅगू, आज न जाने कैसा लग रहा है।

महॅगू—सरकार घर चलें। छुट्टी ले लें। मैं भी चल रहा हूॅ। मालकिन की कैसी हालत है?

रामेश्वर—क्या बतलाऊँ महँगू! डाक्टर कहता है कि दो-एक दिन की मेहमान हैं।

[महँगू की आँखों मे आँसू आ जाते हैं]

महँगू—सरकार, भगवान पर विश्वास रखे। जो कुछ भाग्य मे है, वह होगा। मोहन भी अभी बिलकुल बच्चा है!

[देवनारायण का प्रवेश। वह मुसकरा रहा है। वह आ कर रामेश्वर की बगल मे बैठ जाता है।]

देवनारायण—सुना, परमानन्द को टॉमसन ने अभी-अभी डिसमिस कर दिया!

रामेश्वर—(चौंक कर) क्या कहा? यह क्यो?

देवनारायण—परमानन्द ने जब खन्ना की शिकायत की तो साहब बजाय इसके कि खन्ना के खिलाफ कोई कार्रवाई करते, उन्होंने परमानन्द को ही डिसमिस कर दिया।

[रामेश्वर उठ खड़े होते हैं]

रामेश्वर—मैं अभी टॉमसन के पास जाता हूँ। परमानन्द के छः बच्चे हैं, बुढ़िया माँ है, बीबी है, ये सब भूखों मरेंगे।

[रामेश्वर दो कदम बढता है, उसी समय देवनारायण उसका हाथ पकड़ लेता है]

देवनारायण—बेवकूफी मत करो। क्यों अपने पैरो मे कुल्हाड़ी मार रहे हो। खन्ना के खिलाफ कोई बात नही सुनी जायगी, यह हम सब जानते हैं। परमानन्द ने वहाँ जा कर गलती की और अपनी गलती का नतीजा वह भोगेगा।

[श्यामलाल का प्रवेश।]

रामेश्वर—(श्यामलाल को देख कर) अरे श्यामलाल !

श्यामलाल—आपको ढूँढ रहा था। आ ··

रामेश्वर—क्या हुआ, कहो घर मे तो सब ठीक है ?

श्यामलाल—आ ··मोहन दोमंज़िले से गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राण निकल गये। बहूजी ने जब सुना, तब वे ज़ोर लगा कर उठीं—और वैसे ही लुढ़क पड़ीं। चलिये।

[रामेश्वर कुरसी पर गिर पड़ता है।]

रामेश्वर—हूँ ! तो सब समाप्त हो गया ?

[शून्य दृष्टि से अपने चारो ओर देखता है।]

[मिस्टर टॉमसन के साथ मिस्टर खन्ना का प्रवेश।]

खन्ना—मिस्टर रामेश्वर ! मैंने आपको फाइल दी थी, उस पर अभी तक कोई कार्रवाई नही की। क्यो ?

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मिस्टर खन्ना ने आपकी कई शिकायतें की है। मै आप से आशा नही करता कि आप इतनी लापरवाही करेंगे। देखिए, उस फाइल पर कार्रवाई कर के मेरे पास भेज दीजिये।

[खन्ना और टॉमसन चलने लगते हैं—रामेश्वर खड़ा हो जाता है।]

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन ! एक बात मैं पूछना चाहता हूँ।

[टॉमसन और खन्ना रुक जाते हैं—दोनों आश्चर्य से
रामेश्वर को देखते हैं।]

रामेश्वर—आपने परमानन्द को डिसमिस किया ?

खन्ना—तुम पूछने वाले कौन हो ?

रामेश्वर—(खन्ना से) तुम चुप रहो ! मैं तुम से नहीं पूछ

रहा हूँ। (टॉमसन से) आप जानते हैं कि उसकी लम्बी गृहस्थी है और वही अकेला कमानेवाला है। उसकी बर्खास्तगी के माने है दस प्राणियो का भूखो मरना !

टॉमसन—मुझे दुःख है रामेश्वर, लेकिन मुझे खन्ना और परमानन्द के बीच मे एक को रखना था और एक को अलग करना था।

रामेश्वर—और आपने एक शैतान को अपने साथ रखा, एक मनुष्य को अलग कर दिया।

खन्ना—और अब मिस्टर टॉमसन को मेरे और तुम्हारे बीच मे एक को अलग करना पड़ेगा और एक को रखना पड़ेगा। जो आदमी एक अफसर का अपमान करता है, वह दूसरे का भी अपमान कर सकता है, मिस्टर टॉमसन यह अच्छी तरह जानते है।

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मुझे दुख है कि आप आज इस तरह गैर-ज़िम्मेदारी की बाते कर रहे हैं। कर्तव्य का स्थान भावना के ऊपर है।

[रामेश्वर बढ़ कर खन्ना का गला पकड़ लेता है और दबाने लगता है।]

रामेश्वर—कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है—नही कर्तव्य ही सबसे ऊँची भावना है ! खन्ना, तुम बेचोगे नही !

[खन्ना आँखें फाड़ देता है। सब लोग रामेश्वर को छुड़ाते हैं, लेकिन रामेश्वर मे अमानुषिक बल आ गया है। धीरे-धीरे रामेश्वर खन्ना का गला छोड़ देता है—खन्ना निर्जीव जमीन पर गिर पड़ता है।]

टॉमसन—यह क्या ! यह क्या !

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन ! अभी अभी मेरा लड़का और मेरी पत्नी मर चुके हैं। (श्यामलाल की ओर इशारा करता हुआ)

इनसे पूछ लीजिए। और खन्ना—यह मनुष्य जानता था, आज सुबह ही मैंने इससे कहा था। अपनी खुदी मे भूला हुआ आदमी! (रामेश्वर कुरसी पर बैठ जाता है) दूसरो को सताने वाला, नष्ट करने वाला (कुछ रुक कर) हाँ अब आप पुलिस बुला सकते हैं।

[रामेश्वर का सिर लुढक जाता है—सब लोग दौडते हैं। देवनारायण रामेश्वर की नब्ज देखता है और सिर हिलाता है।]

टेबुल, कुर्सी और चित्र सावधानी के साथ साफ कर रहा है। कमरे मे सन्नाटा है। केवल टाइपराइटर की आवाज हो रही है। एक मिनट बाद कमरे मे घटी बजती है, बाहर से शायद किसी ने स्विच दबाया है। किशोर रुक कर नौकर की ओर रुख करता है।]

कि०—रोशन, देखो बाहर कौन है ?

[रोशन बायें दरवाजें से बाहर जाता है। किशोर कागज देखने लगता है। एक मिनट मे रोशन एक कार्ड ले कर आता है और अदब से किशोर को देता है।]

कि०—(देख कर) प्रोफेसर केदारनाथ। (सोचता है। रोशन से) उन्हे अन्दर ले आओ।

[रोशन बाहर जाता है। किशोर कुर्सी से उठ कर प्रो० केदारनाथ का स्वागत करने के लिए आगे बढता है। बायें दरवाजे से प्रो० केदारनाथ का प्रवेश। प्रो० केदारनाथ ५० के लगभग हैं। बाल कुछ कुछ सफेद हो गये हैं। अंग्रेजी वेशभूषा, हाथ मे छडी।]

कि०—आइए, प्रोफेसर केदारनाथ !

के०—(हाथ मिलाते हुए) थैंक्स। डा० राजेश्वर रुद्र नही है क्या ?

कि०—जी नहीं। वे अभी अपनी लेबोरेटरी से नही आये। (सोचते हुए) आप ही ने शायद खत भेजा था ? जवाब तो गया होगा ? बैठिए !

के०—हाँ, (कुर्सी पर बैठते हुए) जवाब तो मिल गया था, लेकिन मैं अपना प्रोगाम नहीं लिख सका। मैंने अपना प्रोग्राम बदल दिया है। अब यहाँ सिर्फ एक दिन ही ठहर सकूँगा।

काश्मीर परसो ही पहुँच जाना चाहता हूँ।

कि०—ऐसी जल्दी क्या है ?

के०—जल्दी ही है। मै डा० रुद्र से माफी मॉगना चाहता था कि हम लोग उनके यहाँ नही ठहर सकेंगे। मेरी पत्नी भी मेरे साथ हैं। हम लोगों ने सोचा डा० रुद्र बहुत व्यस्त आदमी हैं, हम लोग उनके काम मे‥ ‥‥

कि०—नहीं, आपके खत का जवाब लिखाते वक्त तो वे आपकी बड़ी तारीफ कर रहे थे—कहते थे आप उनके पुराने दोस्त है। वे तो आपके ठहरने से खुश ही होते!

के०—यह उनकी मुहब्बत है। सोचिए, इतना नाम कमा कर वे वैसे ही सादे बने हुए हैं। दुनियॉ मे उनका कितना नाम है। साइंस के अखबार तो उनकी तारीफो से भरे रहते हैं। हम लोगो को अभिमान है कि वे हमारे ही देश के है।

कि०—जी हॉ।

के०—कब तक आवेंगे ?

कि०—और दिन तो इस वक्त तक आ जाते थे; लेकिन आज न जाने क्यो देर हो गई ? शायद काम पूरा न हुआ हो। आजकल वे एक बड़ी गहरी खोज मे लगे हुए है।

के०—अच्छा ?

कि०—कहिये तो उन्हे फोन करूँ ? (फोन हाथ में लेता है)

के०—नहीं रहने दीजिए। उनके काम में विघ्न होगा। जब फुरसत पायेंगे, चले आयेंगे। तब तक मैं ज़रा पोस्ट आफिस तक होता आऊँ। पोस्ट मास्टर से कुछ बात करनी है। काश्मीर का

एड्रेस भी देना है।

कि०—पोस्ट आफिस तो बन्द हो गया होगा।

के०—लेकिन मुझे पोस्ट आफिस क्वार्टर्स जाना है।

कि०—जाने की क्या जरूरत है? फोन कर सकते हैं।

के०—नहीं। उनसे मिलना भी है। यों ही टहलता हुआ जाऊँगा। हाँ, अभी कुछ देर बाद आ सकता हूँ। आप डॉ० रुद्र को मेरा कार्ड दे दें।

कि०—(नम्रता से) बहुत अच्छा।

[केदार का प्रस्थान बायें दरवाजे से। किशोर अपने टेबुल पर आ कर फिर टाइप करने लगता है। दो मिनट के बाद रोशन आ कर किशोर से कहता है —]

रोशन—बाबू, हुजूर आ रहे है।

[किशोर उठ कर अदब से खड़ा हो जाता है। डॉ० रुद्र का प्रवेश बायें दरवाजे से। आयु ५४ के लगभग। लेकिन काम अधिक करने से वृद्ध मालूम पड़ते हैं। आधे से अधिक बाल सफेद हो गये हैं। गम्भीर व्यक्तित्व। अंग्रेजी वेशभूषा जो लापरवाही से पहनी गई है। सोने की कमानी का चश्मा। हाथ मे छड़ी। क्लर्क सलाम करता है। डॉ० रुद्र सलाम का जवाब सर हिला कर देते हैं। छड़ी कोने में रखते हैं और भारीपन से कुर्सी पर बैठ जाते हैं।]

रुद्र—एक गिलास पानी।

[किशोर अदब के साथ एक गिलास में आलमारी से बोतल निकाल कर पानी देता है। डॉ० रुद्र कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे पानी पीते हैं। किशोर अपने पाकेट से विजिटिंग कार्ड निकाल कर टेबुल पर रखता है।

कि०—(चौथा पत्र निकालते हुए) यह पत्र साइंस इंस्टीट्यूट बंगलोर का है।

[इतने मे रोशन दरवाजे से आ कर सलाम करता है और हट
कर खडा हो जाता है। डा. रुद्र रोशन की ओर प्रश्न-
सूचक दृष्टि से देखते हैं।]

रो०—हुजूर, वो साहब यहाँ आए हुए हैं जो अभी आये थे। (कार्ड देता)

रु०—(कार्ड ले कर बिना देखे हुए ही प्रसन्नता से) प्रोफेसर केदार! (कार्ड देखते हैं। किशोर से) मि० किशोर, बाकी चिट्ठियाँ नौ बजे के बाद। अभी इतनी चिट्ठियाँ ही…(डा० रुद्र उठ खडे होते हैं। रोशन से) भेजो उन्हे। (रोशन जाता है) ओ नहीं, मैं खुद (प्रसन्नता से आगे बढ़ते हैं। प्रो० केदार का प्रवेश। डा० रुद्र बडी उमग से गले मिलते हैं।)

के०—(प्रसन्नता से) डाक्टर रुद्र, ओ रुद्र।

रु०—(अलग हो कर) कब आये?

के०—अभी दोपहर को।

रु०—तुम आये थे अभी?

के०—हाँ, लेकिन तुम थे नहीं। मैंने सोचा तब तक पोस्ट मास्टर मिस्टर विश्वास से मिल लूँ। काश्मीर का एड्रेस वगैरह दे दूँ। वे भी घर पर नहीं मिले, जैसा गया वैसा लौट आया।

रु०—बैठो. मुझे खबर नही दी? मेरे पास ठहरने वाले थे तुम तो?

के०—(कुर्सी पर बैठते हुए) हाँ, इरादा तो यही था,

लेकिन ·· ।

रु०—(उत्सुकता से) लेकिन क्या ? (कुर्सी पर बैठते हैं)

के०—मुझे अपना प्रोग्राम बदल लेना पड़ा।

रु०—कैसे ?

के०—मुझे आज ही जाना है। मैं परसों काश्मीर पहुँच जाना चाहता हूँ।

रु०—लेकिन फिर भी मेरे पास ठहर सकते थे ?

के०—लेकिन ठहर नहीं सका। माफ करना डाक्टर !

रु०—आखिर है क्या बात ? ठहरे कहाँ हो ?

के०—मिस्टर जे० के० वर्मा के यहाँ। जानते होगे, ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंट हैं।

रु०—हाँ, हाँ, जानता हूँ। वे तो यहीं रहते हैं, कनाट सरकस में।

के०—उनकी पत्नी श्रीमती शीला मेरी पत्नी की सहेली है। वहीं ठहरना पड़ा। फिर सिर्फ एक दिन की बात······

रु०—अरे ठहरो। सब बातें एक साथ मत कहो। पहले यह बतलाओ तुम्हारी पत्नी···तुम्हारी पत्नी तो···तुम तो अकेले थे···? एं, जरा ठहरो। (किशोर से) मि० किशोर; तुम जरा बाहर के कमरे में बैठो। अभी बुलवाऊँगा। (किशोर गम्भीरता के साथ बायें दरवाजे से जाता है, रुद्र केदार की ओर मुड़ कर) हाँ, तो यह कैसे· तुम्हारी पत्नी···!

के०—(झेंपते हुए) फिर···फिर मैंने दूसरी शादी कर ली।

रु०—(प्रसन्नता से उछल कर खड़े होते हुए) ओ अच्छा प्रो०

केदार, बधाई। तुम मे जिंदगी है। तबीयत है। तुमने खबर नहीं दी? (रोशन को पुकार) ओ रोशन (रोशन का बायें दरवाजे से प्रवेश) जरा चाय और मिठाइयाँ लाओ।

के०—नहीं, डाक्टर रहने दो। मैं अभी नाश्ता करके आ रहा हूँ।

रु०—अच्छा? श्रीमती केदार कहाँ हैं? (नौकर से) जाओ सिगरेट और पान-इलायची लाओ।

(रोशन बाहर जाता है।)

के०—वे वहीं है, श्रीमती शीला के साथ। मैं जब चला था तो खूब बातें हो रही थी। बहुत दिनो के बाद मिली है न?

रु०—उन्हे साथ नहीं लेते आये? बुलवाऊँ? ओः मैं खुद जाऊँ? (प्रस्तुत होते हैं) लेकिन.... (ठहर जाते हैं।)

के०—नहीं, इतनी तकलीफ करने की क्या जरूरत? जाने के पहले वे आपके दर्शन जरूर करेंगी। आपसे मिलने के लिए उन्होंने खुद मुझसे कहा था। बैठिए।

रु०—(बैठते हुए) ऐसी बात है? तो मैं जरूर मिलना चाहूँगा। प्रो० केदार बधाई।

के०—धन्यवाद डाक्टर!

रु०—तो तुमने शादी कर ली! अच्छा प्रोफेसर!

के०—मैं तो शादी करना नहीं चाहता था! पचास के करीब हुआ, लेकिन फिर कर ही ली। सोचा जिन्दगी ठीक हो जायगी!

रु०—जिन्दगी ठीक हो जायगी! अच्छा किया। तब तो अच्छी ही होगी

के०—अच्छी ! बहुत अच्छी !!.....

रु०—अच्छा, अच्छा यह शादी हुई कैसे ?

के०—ऐसे ही। वे हमारे कालिज मे पढ़ती थी। उनके भाई मेरे मित्र थे, उन्होंने ही इसमे प्रारंभ किया। ऐसे ही एक दिन निश्चय हो गया।

रु०—अच्छा, तब तो बहुत पढ़ी-लिखी होगी ?

के०—ग्रेजुएट हैं।

रु०—ग्रेजुएट ? अच्छा। तब तो उमर कुछ बड़ी होनी चाहिए।

के०—हाँ, यही बीस के करीब है।

रु०—तब तो काम मे सचमुच बड़ी मदद मिलेगी। भला बुरा समझने की उमर और फिर लियाकत मे ग्रेजुएट !

के०—वाकई डाक्टर और फिर रत्ना बी० ए० पास है, लेकिन रहन-सहन बहुत सीधा-सादा है। बरताव तो बिलकुल मेरी तबीयत के मुताबिक है !

रु०—बधाई ! खुशी है ! इस उमर मे तुमको ऐसे ही साथी की ज़रूरत है थी ! (रोशन सिगरेट पान-इलायची लाता है।) ओ, सिगरेट पियो, पान खाओ। रोशन, बाहर। (रोशन बाहर जाता है।) ओ अच्छा ! (केदार की सिगरेट जलाता है।)

के०—(सिगरेट का धुँआ छोड़ते हुए) मैं तो पहले सोचता था कि वे मुझसे शादी करेंगी भी या नही ?

रु०—शायद यह बात तुम उमर के लिहाज़ से सोच रहे होगे ?

के०—हाँ; कुछ-कुछ यही बात है। मेरी उमर ५० के करीब होगी, वे सिर्फ़ २० की हैं।

रु०—५० और.. (सोचते हैं ।)

के०—और फिर एक ग्रेजुएट लड़की ! जानते हो डाक्टर, ये ग्रेजुएट्स क्या चाहती हैं ? स्वतन्त्रता—आर्थिक स्वतन्त्रता इकनामिक फ्रीडम—पति सिर्फ उनका साथी है—और पति का कर्तव्य क्या है ? काम्पिटीशन मे बैठे आइ. सी. एस. मे आवे !

रु०—(मुसकरा कर) घर मे चार नौकर, मोटर और सैर सपाटे ?

के०—बिलकुल ठीक। इसी बात से तो पहले मैं झिझक रहा था।

रु०—झिझकने की क्या बात है प्रोफेसर ? लड़की का स्वभाव ही ऐसा होगा कि पढ़ने-लिखने मे ज्यादा दिलचस्पी होगी। नहीं तो वे तुम्हे पसन्द ही क्यो करतीं ?

के०—सचमुच ऐसा ही।

रु०—फिर जब उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया तो क्या इससे यह साफ नही मालूम होता कि वे मामूली लड़की नहीं हैं ? वे उमर के मुकाबले मे तुम्हारे स्वभाव या तुम्हारी लियाकत की ज्यादा कीमत करती हैं। वे गम्भीर स्वभाव की होंगी।

के०—नहीं, गम्भीर तो नही है। वे तो—

रु०—गम्भीर से मेरा मतलब यही है कि वे ज्यादा मिलनसार न होंगी।

के०—हाँ, वे ज्यादा मिलनसार तो नही हैं। बड़ी सरल हैं।

रु०—और वे प्रेम के बजाय तुम्हारा आदर ज्यादा कर सकती हैं।

के०—क्या तुम इन सब बातो से कुछ खोज करना चाहते हो ? तुम तो बड़े भारी मनोवैज्ञानिक हो, मन की बहुत सी नई बातें खोज निकालते हो। एक यह भी सही ··

रु०—हाँ, है तो बहुत मजेदार केस केदार, लेकिन

के०—लेकिन क्या···? मैं बहुत दिनो तक इसी समस्या मे उलझा रहा। वे ग्रेजुएट है, बी.ए. पास है ! लेकिन वे मेरी तबीयत के खिलाफ नहीं जाती। मेरे लिए सब कुछ अपने हाथ से करती हैं। लेकिन यह सब वे क्यो करती है ? क्या इसलिए कि वे मेरी पत्नी हो गई हैं ? या इसलिए कि वे अपने दिल से यह महसूस करती हैं ?

रु०—उनके दृष्टिकोण मे एक उदारता होगी। अच्छा, यह बतलाओ कि जब वे कालिज में पढ़ती थी तो ज्यादा तो नही बोलती थी ?

के०—शायद बिना बोले हफ्ते गुज़र जाते थे। काम तो ठीक कर के लाती थी, लेकिन बातचीत मे हमेशा नपे तुले शब्द। मैंने कभी उन्हे ज्यादा बोलते हुए देखा ही नही।

रु०—शायद उनकी शिक्षा-दीक्षा ही ऐसी हो। घर का वातावरण ही ऐसा होगा। उनके माता-पिता कभी आपस मे न लड़े होगे। पिता शायद सीधे और पुराने ख्याल के हो।

के०—हाँ, यही बात है। उनके पिता एक गॉव के मालगुजार हैं।

रु०—यही बात हो सकती है। लेकिन उनके बी० ए० तक पढ़ने का कोई खास कारण होना चाहिए ?

के०—उनके भाई का ज़ोर था कि वे बी० ए० तक ज़रूर

पढ़ें। उनके भाई एक जज हैं।

रु०—ठीक है। तो ज्ञान और शील दोनो बातें उनमें हैं। लेकिन......

के०—लेकिन क्या ?

रु०—(सोचते हुए) कुछ नहीं।

के०—नहीं, जरूर कुछ है !

रु०—तुमने कभी उन्हे अकेले सोचते हुए देखा है ?

के०—वे कभी अकेली रहना नही चाहती ?

रु०—क्या अकेले रहना नही चाहती ?

के०—जो भी हो, लेकिन वे हमेशा मेरे साथ ही रहती हैं। मेरे साथ ही हँसती-खेलती है। शादी होने के बाद वे कहीं गई ही नहीं। दो तीन दिन के लिए सिर्फ अपने पिता के यहाँ गई थीं।

रु०—कभी तुमने उन्हे उदास देखा है ?

के०—एक बार प्रो० उदयनारायण के यहाँ पुत्रोत्सव से लौटी थीं तो कुछ दिन तक कहती रही कि मुझे कुछ अच्छा नही लगता। लेकिन यह सब कहने के बाद वे शायद सम्हल कर हँसने की कोशिश करती थी।

रु०—बहुत सुन्दर केस है, केदार !

के०—मै चाहता हूँ डाक्टर कि तुम परीक्षा करके देख लो, चाहे जिस तरह। मुझे इतमीनान हो जायगा कि वे जो कुछ हैं, कहाँ तक है, कितनी गहरी हैं।

रु०—मैं तो समझता हूँ कि वे जितनी हैं, सच्ची हैं। यही हो सकता है कि आपके लिए प्रेम होने के बजाय उनके दिल में

आदर ज्यादा हो। वे आपके लिए सब कुछ कर सकती हैं, सब कुछ दे सकती है।

के०—मै भी ऐसा ही सोचता हूँ, लेकिन कभी-कभी उनके बरताव की सरलता देख कर मुझे शक होने लगता है कि यह सब किसलिए? मेरे लिए यह सब करने की क्या ज़रूरत है? मालूम होता है कि वे मुझ पर दया करती है। और यह दया क्यो? मुझे अपने काम मे भुलाना चाहती है?

रु०—शायद!

के०—शायद क्यो? परीक्षण क्यो नही कर देखते? तुम तो बड़े भारी मनोवैज्ञानिक हो। फिर मेरे दोस्त। मेरे साथ पढ़े हुए। मै किसी के सामने अपने जीवन के रहस्य ही क्यो खोलता? तुम मेरे दोस्त हो, इसलिए तुम से कोई चीज़ क्यो छिपाऊँगा? जब मैं तुमको अपने दिल की बात बतला रहा हूँ, फिर तुम क्यो इतना पीछे हटना चाहते हो?

रु०—मै पीछे नही हटना चाहता केदार, लेकिन परीक्षण करना शिष्टाचार के विरुद्ध है। मै तुम्हारे साथ इतनी बेतकल्लुफी से बातचीत करता हूँ, लेकिन तुम्हारी पत्नी से कभी मिला नही। मेरी इच्छा तो निरीक्षण करने की होती है लेकिन... नहीं, नही... अच्छा केदार, फिर बधाई।

के०—(व्यग्रता से) मुझसे कोई तकल्लुफ नही तो उन से भी नही। फिर वे तो आपको जानती है। और कौन आपको नही जानता? फिर हमारे केस से अगर दुनिया होशियार बनती है तो इससे बढ़ कर खुशी की कौन बात हो सकती है? मैं भी

प्रोफेसर हूँ, रिसर्च के लिए कोई रोक नहीं।

रु०—हाँ, मै देखना चाहता था केदार, उनका मनोविज्ञान क्या है।

के०—तो तुम अपना परीक्षण कर सकते हो डाक्टर। मैं उन्हे यहाँ किस समय लाऊँ?

रु०—आजकल मै एक दूसरे परीक्षण मे लगा हूँ।

के०—हाँ, मैंने सुना था कि तुम यंत्र की सहायता से रोने की आवाज़ को हँसी मे बदल सकते हो।

रु०—(खड़े हो कर घूमते हुए) इसमे विचित्रता क्या है? मैंने हर एक स्वर के कम्पन का अध्ययन किया है। जैसे 'ई' है—संवृत दीर्घ अग्र स्वर। इसके बोलने मे जीभ के आगे का हिस्सा उठ जाता है। लेकिन 'ऊ' है—संवृत दीर्घ पश्चात् स्वर। इसके बोलने मे जीभ का पिछला भाग उठता है। मैंने रोने के इस 'ई' को हँसने के 'ऊ' मे बदलने मे सफलता पाई है।

के०—(हँसता हुआ) यह तो बड़े मज़े की बात है। फिर दुनिया मे कभी रोना सुन भी न पड़ेगा। दुनिया से रोना ही उठ जायगा।

रु०—लेकिन इससे क्या? रोने की भावना उठ जाना ज़रूरी है। शायद हँसी सुनते-सुनते रोना भूल जाय!

के०—तब तो संसार का तुम बड़ा उपकार करोगे, डाक्टर!

रु०—उपकार तो तब हो जब मेरा नया परीक्षण पूरा हो जायगा।

के०—कौन सा?

रु०—मैं एक ऐसा रस बनाने मे लगा हुआ हूँ जिसके पीने से बूढ़ा आदमी भी जवान हो सकता है।

के०—(उछल कर) ऐं सचमुच ?

रु०—हाँ, बूढ़ा भी जवान हो सकता है।

के०—तब तो क्या कहना ! मुझे दोगे डाक्टर ?

रु०—जरूर ! लेकिन····· (सोचने लगता है।)

के०—लेकिन क्या ? सोचने लगे ?

रु०—कुछ नहीं। मेरे मन मे यही बात उठी कि तुम्हारी इस खुशी मे क्या तुम्हारे बूढ़े होने की भावना नहीं पाई जाती ?

के०—(हँस कर) भला तुमसे मै क्या छिपा सकता हूँ डाक्टर, लेकिन इस बात को छोड़ो। यह बताओ कि तुम उस रस का मुझ पर परीक्षण करोगे ?

रु०—हाँ, हाँ, इसमे तो मुझे ही आसानी होगी। मुझे कहीं दूर न जाना होगा।

के०—लेकिन यह बात असम्भव है, डाक्टर। एक रस से बूढ़ा आदमी जवान मे तबदील हो जाय !

रु०—असम्भव क्यो है ? पुराने जमाने मे लोग कितने दिनों तक जीते थे ? जानते हो वे क्या करते होंगे ? मेरुदण्ड के नीचे मूलाधारचक्र के सूर्य से जो विष का प्रवाह पिंगला नाड़ी से शरीर मे होता है, वे उसे रोक देते थे और सहस्र-दल-कमल के ब्रह्म-रंध्र के पास चन्द्र से इड़ा नाड़ी में जो अमृत का प्रवाह होता है उसे और भी उत्तेजित करते थे। आदमी मे कायाकल्प होता था। वह हज़ारो वर्ष तक जीता था। वे यह सब कुछ किसी यौगिक

क्रिया से करते थे, मैं यह एक तरल पदार्थ से करना चाहता हूँ। मूलाधारचक्र के विष को अपने रस से नष्ट करना चाहता हूँ।

के०—तब तो बड़ी अच्छी बात होगी !

रु०—(प्रसन्नता से) इसमे कोई शक नहीं, बड़ी अच्छी बात होगी। आदमी हज़ार वर्ष तक जवान रह कर जिन्दा रह सकेगा। आज कल की जिन्दगी कितनी छोटी है ! ५०, ६०, ७०, बस। इतने में क्या होता है ? जिन्दगी मे इतनी बहुत सी बाते है जिनके लिए ५०, ६० वर्ष कुछ भी नही है। आदमी की उमर तो और बड़ी होनी चाहिए। हमारे देश मे तो औसत उमर सिर्फ २३ साल की है ! हम और आप किसी दूसरे की जिन्दगी मे साँस ले रहे हैं।

के०—सचमुच डाक्टर, यह काम कर दो तो पहले हम तुम ही अमर हो जाएँ।

रु०—और रत्ना ? श्रीमती रत्ना ?

के०—हाँ, वह भी। (सिर हिलाता है।)

रु०—उसे क्यो भूल गये ?

के०—(कटते हुए) आँ, आँ, वह भी। उसे कैसे भूल सकता हूँ ? डा० इन बातों को ··तुम्हारी इन खोजो को सुन कर तो मेरी तबीयत और भी हो आई है कि तुम मेरी पत्नी की मनोवैज्ञानिक परीक्षा करो।

रु०—लेकिन मेरा साहस नही होता ! एक अपरिचित और फिर स्त्री।

के०—मैं जो कहता हूँ। वह मेरी स्त्री है। तुम्हे जानती है।

फिर तुम भी उसे जानने लगोगे।

रु०—फिर भी...

के०—अच्छा, एक बात सुनो। भीतर के कमरे मे चलो। मैं तुम्हे बतलाऊँ। (उठ खड़े होते हैं)

रु०—भीतर चलूँ ?

के०—हाँ, भीतर एक बात कह दूँ। उससे तुम सब समझ सकोगे।

रु०—अच्छा, चलो। ऍ, ज़रा ठहरो। (जोर से) किशोर! (किशोर का प्रवेश) देखो, वे दो-तीन चिट्ठियाँ टाइप करो। मै अभी आता हूँ, समझे ?

[डा० रुद्र का प्रोफेसर केदार के साथ दायें दरवाजे से प्रस्थान। किशोर टाइप करता है। परदे के पीछे सगीत होता है। दो-तीन मिनट के बाद डा० रुद्र का प्रो० केदार के साथ हॅसते हुए प्रवेश।]

रु०—अच्छी बात है। फिर आप कितनी देर बाद लौटेंगे ?

के०—यही पॉच मिनट मे।

रु०—तो फिर भाई, मै जिम्मेदार नही। तुम जानो।

के०—सब बातें मुझ पर छोड़ दो डाक्टर, कम से कम मुझे विश्वास तो हो जायगा।

रु०—अच्छी बात है।

के०—तो फिर मै जाता हूँ। (चलने के पूर्व सिगरेट जलाते हैं)

[केदार का प्रस्थान। डा० रुद्र अभिवादन-स्वरूप उठ कर दूसरी कुर्सी पर बैठ कर सोचने लगते हैं। थोड़ी देर बाद किशोर से]

रु०—किशोर !

कि०—(पास आ कर) कहिए।

रु०—देखो, मैं जो परीक्षण कर रहा हूँ उसकी सारी चीजें ला कर सामने रखो।

कि०—वही 'अमर यौवन' की चीजें ?

रु०—हाँ। (आदेश-दृष्टि)

कि०—बहुत अच्छा।

[किशोर आलमारी खोलता है। एक अलग टेबुल पर एक टाबेल, दो बोतलें एक काली और छोटे मुँह की, दूसरी सफेद और चौड़े मुँह की, बेसिन, एक फ्लास्क, एक हरे रंग का कपड़ा सावधानी के साथ रखता है।]

कि०—स्टोव जलाऊँ ?

रु०—हाँ। (बोतल उठा कर तरल पदार्थ देखते हैं।)

[किशोर स्टोव में स्पिरिट डाल कर दियासलाई से जलता है। इस बीच में कमरे में जो चार्ट लगे हुए हैं, डा० रुद्र उनका निरीक्षण कर रहे हैं। देखते हुए वे कोट उतारते हैं फिर चौड़े मुँह की बन्द बोतल जिसमें एक बल्ब लगा हुआ है, तिरछी करके देखते हैं। स्विच आन करने से बोतल के अन्दर का बल्ब जल उठता है। बल्ब के प्रकाश में तरल पदार्थ को बड़ी सावधानी से देखते हैं]

रु०—(देखते हुए किशोर से) स्टोव जल गया ?

कि०—जी, पंप करता हूँ। (स्टोव में पंप करता है)

रु०—थोड़ा पानी गरम करो।

कि०—जी, (पानी एक बोतल से निकालता है उसे गरम करता है।)

रु०—कल जो परिणाम निकले हैं, वे सिलसिलेवार हैं ?

कि०—जी हाँ,

रु०—उन्हे मेरे पास रखो।

[किशोर टेबुल से दो कागज निकाल कर बोतलो के पास
दूसरी टेबुल पर रखता है।]

रु०—यह नोट पढ़ कर सुनाओ। (एक कागज किशोर के हाथ मे देता है।)

कि०—(लेते हुए) जी। (नोट पढ कर सुनाता है।) मूलाधार चक्र से आगे बढ़ते हुए इडा नाड़ी पॉच बार मुड़ती है। तब वह अज्ञाचक्र के समीप पहुँचती है। रस का घनत्व इतना होना चाहिए कि वह नाड़ियो के तरल पदार्थ को प्रभावित कर मूलाधार चक्र मे कम से कम चौबीस सेकेंड मे अपनी संपूर्ण प्रक्रिया कर सके। उस रस के तत्त्व में गन्धक · (बाहर आवाज होती है। रोशन का प्रवेश। वह अदब से एक कोने मे खड़ा हो जाता है। डा० रुद्र रोशन की ओर जिज्ञासा-दृष्टि से देखते हैं।)

रोशन—हुजूर, प्रोफेसर केदारनाथ साहब और एक बीबी जी आई हैं।

रु०—अच्छा, बाहर के कमरे मे। (किशोर से) पानी गरम हो गया ?

कि०—जी, गुनगुना।

रु०—ठीक, स्टोव बन्द कर दो। तुम बाहर जाओ। देखो 'साइंटिफिक अमेरिकन' अपने साथ लोगे और उसमें छपे हुए मेरे लेख का संक्षेप लिखोगे।

कि०—वही 'दि डेफीनीशन अव् ए क्राई' ?

रु०—हाँ, वही। बाहर के कमरे मे बैठोगे और प्रोफेसर तथा उनकी पत्नी को यहाँ भेजोगे।

[किशोर स्टोव बन्द करता है, टेबुल पर से 'साइंटिफिक अमेरिकन' की प्रति उठाता है। प्रस्थान। डा० रुद्र काली बोतल उठा कर आलमारी मे रखते हैं और एक दूसरी नीली बोतल निकालते हैं। फिर गभीरता के साथ अभ्यागतों का स्वागत करने के लिए उठते हैं। कोट पहनते हैं और दरवाजे के करीब तक बढते हैं] आइए, [प्रोफेसर केदारनाथ और उनकी पत्नी रत्ना का प्रवेश। रत्ना का गौर वर्ण। सुन्दर मुख-मुद्रा। नीली रेशमी साड़ी। जैसे एक शान्त बिजली बादलों के वस्त्र पहन कर आई है। सौम्य और गम्भीर।]

के०—(हर्षोल्लास के साथ) डा० रुद्र, ये मेरी पत्नी श्रीमती रत्ना नाथ और (रत्ना से) ये·· ···

रत्ना—(हाथ जोड़ कर) प्रणाम!

रु०—(हाथ जोड कर) नमस्कार!

रत्ना—(प्रसन्नता से) आपके दर्शन कर कृतार्थ हुई।

रु०—(किंचित् स्मिति के साथ) आप से मिल कर खुशी हुई। आइए, बैठिए। (डा० रुद्र श्रीमती रत्ना को काउच पर बिठालते हैं। केदार और रुद्र पास की कुर्सियों पर बैठते हैं। रुद्र केदार और रत्ना को पान देते हैं। केदार सिगरेट जलाते हैं।)

रत्ना—क्षमा कीजिए, मैं पान नही खाती, इलायची ही लिये लेती हूँ।

रु०—(संकोच स्वर मे) ज़रा माफ कीजिये, मैंने अपने अध्ययन और मिलने के कमरे को एक मे मिला रखा है।

रत्ना—(हँस कर) ओह, इसमे कौन सी बात है ? कमरे मे तो सजावट है ही। इतने सुन्दर चित्र लगे हुए है। शायद संसार के वैज्ञानिको के हैं। (गहरी दृष्टि से देखते हुए) उधर आइंसटीन हैं, ये मारकोनी, ये जगदीशचन्द्र बोस, ये मेघनाथ साहा .... (दीवारों पर दृष्टि फेंक कर) आपका चित्र नही दीख पड़ता ?

के०—हॉ तुम्हारी फोटो कहॉ है, डाक्टर ? (प्रश्नपूर्ण दृष्टि)

रु०—(वीतरागी के भाव से) क्या आवश्यकता है ? विज्ञान के स्वामियो के फोटो लगा करते है, सेवको के नही। (बात बदलते हुए) कहिए मार्ग मे कोई कष्ट तो नही हुआ ?

र०—जी नही, धन्यवाद।

के०—डा० रुद्र, आप से मिलने की अभिलाषा मे शायद इन्हे रास्ते की तकलीफ कोई तकलीफ नही मालूम हुई। और अभी जब मैंने इनसे आप से मिलने के बारे मे कहा तो ये ऐसे ही तैयार हो गईं। इन्हें आप के दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी।

र०—जो आज सफल हुई।

रु०—धन्यवाद ! मुझे बहुत खुशी हुई आपसे मिल कर। मै तो आपके प्रोफेसर केदार का साथी हूँ। हम दोनो साथ पढ़ते थे। इन्होंने अंग्रेजी ली थी, मैंने भौतिक विज्ञान। ये कानून पढ़ते रहे, मैंने अपने ही आप दर्शन पढ़े। इसके बाद हम लोग अलग हुए। मैं डी० एस्-सी कर दिल्ली आ गया, ये वही प्रोफेसर हो गये। अगर भौतिक विज्ञान के बजाय मैं दर्शन ही लेता तो शायद प्रोफेसर केदार के साथ होता।

के०—मुझे तो खुशी होती।

र०—लेकिन संसार का अपकार होता। भौतिक विज्ञान और दर्शन को मिला कर आपने जितनी खोजें कीं, उतनी कौन करता ? ऐसा वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक संसार मे कठिनाई से मिलेगा।

रु०—आप तो बहुत अच्छी हिन्दी बोलती हैं।

र०—हिन्दी मातृ-भाषा है न ? अपने देश की राष्ट्र-भाषा।

रु०—हमारे देश को आप जैसी आदर्श देवियों की आवश्यकता है।

र०—मुझे लज्जित न कीजिए। आप अपनी महानता से ऐसा कह रहे हैं। इनकी (केदार की ओर सकेत कर) इच्छा थी कि रास्ते मे दिल्ली रुक कर आपके पास ठहरे । मैं भी यही चाहती थी कि विश्व-विख्यात महापुरुष के सत्संग मे कुछ समय सार्थक करूँ किन्तु उत्साह नहीं हुआ। मैं नहीं जानती थी कि आप इतने महान् हो कर इतने सरल हैं।

रु०—(गम्भीर स्मिति के साथ) धन्यवाद।

र०—फिर शीला मेरी सहपाठिनी हैं। उन्होंने लिखा था कि काश्मीर जाते समय मेरे यहाॅ न ठहरोगी तो लड़ाई होगी।

रु०—हाँ, आजकल लड़ाई का जमाना है । जिसे देखो वही लड़ता है। (हास्य) लेकिन आज शाम खाना मेरे यहाँ ही होगा।

के०—नहीं डाक्टर, हम लोगों को देर हो जायगी। आज ही जाना है। धन्यवाद !

र०—श्रीमती रुद्र तो होंगी भीतर ?

रु०—नहीं, वे नहीं हैं। दस वर्ष हुए वे मुझे संसार में काम का भार सौंप कर चली गईं ! उनकी असामयिक मृत्यु ने ही मुझे

खोज के काम की ओर बढ़ाया। मै मनुष्य-जीवन को अधिक स्थिर करना चाहता हूँ। काश ! वे जीवित होती।

[रत्ना के मुख से अनायास आह निकल जाती है।]

के०—(वातावरण बदलते हुए) रत्ना, डा० रुद्र की खोज अचरज में डाल देने वाली है। इन्होंने एक ऐसा रस बनाया है जिससे आदमी बहुत दिनो तक जिन्दा रह सकता है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इनके रस से बूढ़ा भी जवान हो सकता है।

र०—(आश्चर्य से) सचमुच ?

रु०—लेकिन अभी वह रस ठीक तरह से तैयार नही है।

के०—क्यो उसमे कमी क्या है ?

रु०—उसके अन्तिम रूप के प्रयोग नही हुए।

के०—तो मुझ पर कर सकते हो।

रु०—ज़रूर, तैयार होने पर करूँगा।

के०—लेकिन अभी क्या हानि है ? रस तो करीब-करीब बन ही चुका।

रु०—हाँ, बन तो चुका है। लेकिन एकबारगी मनुष्य पर प्रयोग करना ठीक नही है।

के०—क्यों ठीक नही ? मेरी उम्र ५० के लगभग है। काम अब भी बहुत करना है। कभी थकावट मालूम होती है। मुझपर प्रयोग करोगे तो मेरा ही भला करोगे।

रु०—मुमकिन है अभी उसका पूरा असर न हो।

के०—तो उसमें क्या हानि है ? एकदम २५ वर्ष का न हुआ

तो दस पाँच वर्ष छोटा हो ही जाऊँगा।

रु०—(रहस्यपूर्ण मुस्कान से) श्रीमती रत्ना, आपकी क्या राय है।

र०—(सकोच से) मै क्या कहूँ ?

रु०—प्रो० केदार, अभी रस तैयार नही हुआ। यह देखो, अभी टेबल पर ही रक्खा हुआ है (उठ कर बोतल उठा कर उसे हाथों से झुलाते हैं) जब बन जायगा तो सचमुच मेरा जीवन सफल हो जायगा।

र०—आप तो अमर हो जायँगे।

रु०—कौन जाने ? लेकिन अब अधिक जी कर क्या करूँगा ? जो कुछ थोडा-बहुत करना था कर चुका। और अब अकेला हूँ। मेरी स्त्री मेरा रास्ता देख रही होगी।

र०—आप ऐसी बाते न कहे। हृदय भर आता है। अभी आप न जाने क्या क्या खोज करेंगे !

के०—तब तक डा० रुद्र, मैं तो तुम्हारे प्रयोग से लाभ उठाऊँगा ही। और टेबुल पर यह रस देख कर तो मेरी और इच्छा हो गई है। डाक्टर, एक खुराक मुझे दे दो। रत्ना ··(प्रश्नसूचक दृष्टि)

र०—(आकुलता से) अभी वह तैयार कहाँ हुआ है ? इस हालत मे वह कही हानि न पहुँचावे ?

के०—डा० रुद्र का रस और हानि पहुँचावे ? असम्भव, अब मैं अपनी तबीयत नही रोक सकता। तुम्हे देना ही होगा।

रु०—इतना आग्रह ?

के०—हाँ, अब यह उमर मुझे तकलीफ देने लगी है। काम

भी नही कर सकता, नीद भी नहीं आती।

रु०—अच्छा, तब दूँगा! लेकिन काश्मीर हो आओ। तब तक मेरे सब तो नही कुछ प्रयोग अवश्य हो चुकेंगे। अभी ऐसी ज़रूरत भी नही। काश्मीर जा रहे हो। वहाँ जा कर तो खुद तुम मे ताज़गी आ जायगी।

के०—यह तो ठीक है। लेकिन यहीं से काश्मीर का असर लेता चलूँ। तुम्हारे रस से जो कुछ कमी रह जायगी वह वहाँ पूरी हो जायगी।

रु०—मै नही जानता।

के०—डाक्टर, मैं जानता हूँ। मुझे रस दो।

रु०—श्रीमती रत्ना, इसकी ज़िम्मेदारी आप पर है?

र०—मै क्या कहूँ!

के०—(उठ कर) डाक्टर, इसकी जिम्मेदारी खुद मुझपर है। दो वह रस। एक दोस्त की ज़रा-सी बात पूरी नहीं कर सकते?

रु०—श्रीमती रत्ना!

र०—(केदार से) देखिए, आप अभी रस क्यों पी रहे हैं? अभी वह रस तैयार कहाँ है?

के०—वह रस ज़हर तो है नही कि मै मर जाऊँगा। उससे कुछ न कुछ लाभ होगा ही। और रत्ना, ज़िन्दगी मुझे बहुत प्यारी मालूम होती है। मुझे इस दुनिया में और रहने दो।"

र०—(बीच में) मैं अब कुछ न कहूँगी।

के०—डाक्टर, कृपया……

रु०—अच्छी बात है। (उठ कर) प्रोफेसर, अगर तुम युवक

हो गये तो श्रीमती रत्ना को भी प्रसन्नता होगी!

र०—मैं तो अब भी प्रसन्न हूँ।

के०—डाक्टर, वे ठीक कह रही हैं। लेकिन मेरी खुशी में वे और भी खुश होंगी।

रु०—अच्छा, तो फिर रस तुम्हे दे दूँगा। इस कुर्सी पर बैठो।

[टेबुल के पास की कुर्सी की ओर सकेत करते हैं।]

के०—(अत्यानन्द से) ओः, धन्यवाद डाक्टर! ओः, धन्यवाद! तुम कितने अच्छे हो डाक्टर! (दूसरी कुर्सी पर बैठते हैं) तुम मेरे पक्के मित्र हो।

रु०—मैं कब न था? (रत्ना से) श्रीमती रत्ना, प्रोफेसर अब युवक हो जावेंगे। बिलकुल नवीन……

र०—डा० रुद्र, देखिए उन्हे नुकसान न होने पावे! मैं जानती हूँ कि आपके हाथ मे ये सुरक्षित हैं, फिर भी मुझे घबराहट मालूम होती है। देखिये डाक्टर, आपका प्रयोग ठीक हो!

रु०—कोशिश तो मेरी आप के हित में होगी; लेकिन रस के इस अवस्था के विषय मे मै ठीक नहीं कह सकता।

के०—मै ठीक कह सकता हूँ। अपनी सूरत तुम खुद नहीं देख सकते, मै देख सकता हूँ। रत्ना, तुम इतना घबराती क्यो हो?

रु०—मैं अजीब उलझन मे हूँ।

के०—यह उलझन अभी दूर होती है। क्यो डाक्टर, जवान होने पर मुझे आप पहचान सकेंगे?

रु०—(रत्ना से) आप प्रोफेसर केदार को पहचान सकेंगी (रत्ना चुप रहती है।)

के०—डाक्टर, इनकी पहचान काफी तेज है ! मैं होली मे इनके कुत्ते को खूब रँग देता हूँ, तब भी ये उसे पहचान लेती हैं। तो क्या मुझे न पहचान सकेंगी ? (हास्य)

र०—(लज्जित हो कर) क्या कहते हैं आप !

के०—अच्छा रत्ना, मालवीय जी का कायाकल्प तो ठीक न हुआ। डा० रुद्र की सहायता से मेरा कायाकल्प होगा। देख लो, मेरे इस दुबले-पतले शरीर को, इन सफेद बालो को, फिर ये देखने न मिलेंगे। आखिरी दर्शन हैं।

र०—आप बहुत हँसी करते हैं। (रुद्र से) डा० रुद्र, आपके सामने तो ये बहुत विनोदी हो गये हैं।

के०—आने वाली घटनाएँ पहले ही अपनी सूचना दे देती है। अब युवक होने जा रहा हूँ, विनोद न सूझे ?

रु०—क्षमा करें श्रीमती रत्ना, हम लोग आपस मे बहुत बेतकल्लुफ है। अच्छा प्रोफेसर !

के०—हाँ, मैं बिलकुल तैयार हूँ।

रु०—(टावल देते हुए) यह टावल भिगो कर अपने बाल गीले कीजिए ! स्टोव पर गरम पानी है।

[केदार उठते हैं, टावल भिगो कर अपने सिर से रगड़ते हैं। इस बीच में डा० रुद्र परिणाम के कागज जो क्लर्क ने टेबुल पर रख दिये हैं, देखते हैं। रत्ना अवाक् हो कभी डा० रुद्र की ओर और कभी प्रोफेसर की ओर देखती है।]

रु०—(अपने आप) तेईस दशमलव सात, फिर दशमलव शून्य शून्य एक।

के०—मेरे बाल गरम पानी से भीग गये।

रु०—(कागज से अपना ध्यान हटा कर) अच्छा कुर्सी पर बैठिए।

[केदार कुर्सी पर बैठते हैं। रुद्र टेबुल पर से हरा कपड़ा उठा कर केदार के सिर से बाँधते हुए कहते हैं।]

सहस्रदल कमल तालू के मूल से सिर के ऊपरी भाग तक है। मै इस कपड़े से उसे कसता हूँ। सहस्रदल कमल का हरे रंग से सामंजस्य है। जब आप रस पी लें तो इस कपड़े को खोल लें।

के०—डाक्टर, आप ठीक कहते है। रत्ना, यह चमत्कार देखो!

रु०—और देखो, जो रस मैं आपको दूँगा, उसे एक घूँट ही में पी जाना होगा। उसे एक बारगी मूलाधारचक्र मे पहुँचना चाहिए। धीरे-धीरे पीने से नुकसान होने का अंदेशा है।

र०—(भर्राई आवाज मे) जल्द ही यह पी जाइएगा!

के०—बहुत जल्दी।

रु०—और साथ ही सोचना पड़ेगा—कहना पड़ेगा—कि मैं जवान हो रहा हूँ!

के०—ठीक है डाक्टर, मैं ऐसा ही कहूँगा, ऐसा ही कहूँगा।

रु०—और देखिए, मै दवा निकालने जाऊँगा, वैसे ही अँधेरा हो जाना चाहिए। नही तो उजेला आँखो की राह हो कर दवा के गुण को नष्ट कर देगा। इस नीली बोतल मे उजेले का प्रवेश नहीं है।

के०—ठीक, मालवीय जी ने भी कायाकल्प के प्रयोग अँधेरी कोठरी में किये थे।

रु०—(रत्ना से) अच्छा श्रीमती रत्ना, आप उस दूर की कुर्सी पर बैठ जावें। प्रोफेसर केदार, इस समय आप श्रीमती रत्ना की बात नहीं सोचेंगे। सारी दुनिया को भूल कर खुद को देखेंगे।

के०—ऐसा ही होगा।

[रत्ना दूर की कुर्सी पर जा कर बैठती है।]

रु०—तो अब मै रस निकालता हूँ।

[डा० रुद्र बोतल हाथ मे लेते हैं। स्टेज का सारा प्रकाश बुझा दिया जाता है। केवल बोतल और गिलास के उठाने और रखने की आवाज आती है। गिलास मे तरल पदार्थ का 'छल छल' शब्द होता है।]

रु०—प्रोफेसर, मैंने यह गिलास मे रस डाल दिया।

के०—लाइए। (केदार रस पी जाते हैं) डाक्टर, मैंने यह रस पी लिया मैंने सिर का कपड़ा भी खोल लिया।

के०—(धीरे धीरे प्रत्येक शब्द पर रुकते हुए) ''जवान ''हो रहा हूँ। मै ' जवान'' हो ' रहा'''हूँ ''

[आधे मिनट तक शान्ति रहती है]

रु०—इस समय रस का असर हो गया होगा। कुछ अनुभव कर रहे हैं ?

के०—हाँ, मुझ मे बहुत अन्तर हो रहा है। मालूम होता है जैसे चीटियाँ चल रही है। हाथ पैर मे कोई लहर दौड़ रही है। आँखो मे कुछ बिजली सी चमक रही है।

र०—(उद्विग्नता से) क्या ?

रु०—(जीभ की सीटी से रत्ना को बीच ही मे बोलने से मना करता है।) प्रोफेसर केदार, अब आप जवान बन रहे हैं, यह तो

होगा ही। लेकिन लहर ऊपर से नीचे जा रही है या नीचे से ऊपर ?

के०—नीचे से ऊपर।

रु०—(आश्चर्य से) ऍ ?

[डाक्टर रुद्र शीघ्र ही प्रकाश करते हैं। उजाले में दीख पड़ता है, केदार बिलकुल बूढ़े हो गये हैं। उनके सभी बाल सफेद हो गये हैं। आँखें कमजोर हो कर बार-बार झपक जाती हैं। हाथ पैर शिथिल हो गये।]

रु०—(उद्वेग से) यह क्या ?

र०—(विह्वल हो कर) अरे यह क्या ? (कुर्सी पर अचेत हो जाती है।)

रु०—(कुछ क्षण अवाक् रह कर धीरे-धीरे) प्रोफेसर यह क्या हुआ ? श्रीमती रत्ना बेहोश हो गई ?

के०—(करुण स्वर में) रत्ना ! (उठाना चाहता है।)

रु०—प्रोफेसर, वहीं बैठिए। मैं सहायता करता हूँ (रत्ना के मुख पर पानी छिड़कते हैं) ओफ, श्रीमती रत्ना इतने कमज़ोर दिल की है ! (हवा करते हैं।)

के०—डाक्टर, इन्होंने मेरी यह हालत जो देख ली।

रु०—(रत्ना को पुकारते हैं) श्रीमती रत्ना ! श्रीमती रत्ना !!
(हवा करते हैं। रत्ना होश में आती है।)

र०—(होश में आ कर परिस्थिति की स्मृति आने पर) ओह, यह क्या हो गया !

[कुर्सी पर अत्यन्त शिथिल। फिर शीघ्रता से केदार के पास

आ कर जमीन पर बैठ जाती है।]

रु०—(ढाढस देते हुए) श्रीमती रत्ना, आप अपना हृदय मज़बूत करे।

र०—ओह, ये कैसे हो गये !

रु०—मैं कहता था कि अभी रस तैयार नहीं है। सहस्रदल से अमृत उठने के बजाय मूलाधार का विष सारे शरीर मे फैल गया ! उसी से बुढ़ापा आ गया।

र०—आह ! (अत्यन्त दुःख की मुद्रा)

रु०—श्रीमती, मुझे माफ करे। मेरे ही रस से यह सब कुछ हुआ ! लेकिन इसमे मेरा कसूर बहुत थोड़ा है। प्रोफेसर केदार ने ही इतना ज़ोर दिया। (केदार के समीप कुर्सी रखते हुए) उठिए, कुर्सी पर बैठ जाइए।

र०—ओह, यह क्या हो गया ! (कुर्सी पर बैठना अस्वीकार करती है।)

के०—(खाँसता हुआ) डाक्टर, मैं समझता था कि तुम्हारे रस से फायदा ही होगा। (खाँसी आती है।) ओह, मेरे हाथ-पैर कितने कमजोर मालूम हो रहे है, रत्ना !

र०—(प्रार्थना के स्वर में) डाक्टर अब मै क्या करूँ ? क्या आपके रसायन मे कोई ऐसी चीज़ नही जो इन्हे पहले जैसी अवस्था मे ला दे ?

रु०—श्रीमती रत्ना, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। अब इन्हे उस समय तक इसी हालत मे रहना होगा जब तक कि मैं अपने रस को फिर से पूरा सिद्ध न कर लूँ। रस के सिद्ध होने पर मैं फिर

इन्हे पहले जैसा बना लूँगा।

र०—कब तक ये इसी तरह रहेगे ?

रु०—यही तीन चार बरस !

र०—(आश्चर्य और क्षोभ से) तीन चार बरस ! बहुत होते है। लेकिन आप तो कहते थे कि काश्मीर से लौटने पर इन्हे आप रस दे सकेंगे, अब कह रहे है तीन-चार बरस।

रु०—ठीक है। मै पहले समझता था कि मेरा रस तैयार हो चुका है, उसके केवल अन्तिम प्रयोग बाकी हैं, लेकिन प्रोफेसर केदार पर रस का यह परिणाम देख कर मुझे सारी विधियॉ फिर से करनी पड़ेगी और इन्हीं मे कम से कम तीन-चार वर्ष का समय लग जायगा।

र०—ओह, डाक्टर, यह क्या हो गया !

रु०—लेकिन श्रीमती रत्ना, आप यह क्यो नही सोचतीं कि इस बात से मेरे नाम को कितना धका लगेगा ? डा० रुद्र इस बुरी तरह से अपने परीक्षण मे फेल़ हुए ! संसार के लोग क्या कहेगे ! (फूलदान के एक फूल को हाथ में ले कर मसलते हुए) डा० रुद्र पागल है, डा० रुद्र मूर्ख है।

के०—(धीरे-धीरे) डाक्टर, सारा कसूर मेरा ही है। मैंने ही तुम्हे रस देने के लिए जबरदस्ती की। ओह !

र०—(दीनता से) डा० रुद्र, कृपा कर के ऐसा रस दें जिससे ये फिर वैसे ही हो जायँ ? आप तो संसार के बड़े वैज्ञानिक हैं। उसी रस को कुछ बदल कर दे सकते हैं।

रु०—श्रीमती रत्ना, जो आप कहती हैं, वह वैसा सरल

नही है।

र०—डा० रुद्र, मैं सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ, जिन्दगी भर की कमाई दे सकती हूँ। (हाथ जोड़ कर झुक जाती है।) जीवन भर उपकार न भूलूँगी।

रु०—(सतोष देने के स्वर मे) श्रीमती रत्ना, आप दुखी न हो। मै अपने सारे काम छोड़ कर इसी पर खोज करूँगा और जल्दी से जल्दी इस रस की सिद्धि करूँगा। प्रोफेसर केदार, तब तक आप मुझे माफ करें।

के०—(रत्ना से) रत्ना, अब मै काश्मीर नही चल सकता! चलने फिरने की ताकत भी नही मालूम देती। अब मुझे घर ले चलो!

र०—(आह भर कर) आह डा० रुद्र, इन्हे अच्छा कर दो!

रु०—श्रीमती रत्ना, यह इस समय बहुत कठिन है।

र०—ओह! यह क्या हो गया! (सिर पकड़ कर झुक जाती है।)

रु०—लेकिन, एक तरह से मै इस कठिनाई को हल कर सकता हूँ।

र०—(उमग से उठ कर) कैसे? डाक्टर कैसे? जल्द बतलाइए?

रु०—मै देख रहा हूँ, प्रोफेसर केदार से अधिक आपकी हालत खराब है। आप इतनी दुखी है तो केदार आपको देख कर और भी दुखित होंगे। मै एक काम कर सकता हूँ।

र०—वह क्या? (उत्सुकता की दृष्टि)

रु०—मनोविज्ञान के अनुसार यह परिस्थिति केवल एक बात

से हट सकती है वह यह कि आप भी बूढ़ी बन जायँ। (रत्ना गम्भीर हो जाती है। (उस वक्त न प्रोफेसर केदार को तकलीफ होगी न आपको। फिर रस तैयार होने पर मैं आप दोनों को अच्छा कर लूँगा।

र०—(गम्भीरता से धीरे-धीरे) मैं भी बूढ़ी बन जाऊँ? (उसी कुर्सी पर बैठ जाती है।)

रु०—हाँ, आपको कष्ट न होगा।

र०—डाक्टर, क्या मेरे बूढ़े होने से प्रोफेसर साहब को शान्ति मिलेगी।

रु०—जरूर। वे चाहे कुछ न कहें किन्तु उन्हें तभी शान्ति मिलेगी। क्यों प्रोफेसर केदार?

[केदार कुछ नहीं बोलते।]

र०—(सोचते हुए) मुझे भी बूढ़ी होना चाहिए!

रु०—हाँ। (स्वर में दृढ़ता)

र०—तो ' तो फिर मुझे वही रस दीजिए डाक्टर, मैं इस जिंदगी से घृणा करती हूँ। डाक्टर, यह उमर मुझे नहीं चाहिए। डाक्टर, इस अभिशाप से मुझे बचाइए। डाक्टर ··

रु०—ठहरिए, ठहरिए श्रीमती रत्ना! जरा सोचिए!

र०—अब सोचने का अवकाश नहीं है। मैं भी इसी रास्ते से जाना चाहती हूँ!

रु०—ठीक है, आपको जाना चाहिए, लेकिन इस पर विचार कर लीजिए। आप अपना बलिदान करने जा रही हैं।

र०—मैं इसके लिए तैयार हूँ। मुझे जीवन की शान्ति किसी

तरह नही मिलेगी।

रु०—श्रीमती रत्ना आप बहुत कुछ खो रही है।

र०—(तीक्ष्णता से) डा० रुद्र, मेरे पति की यह दशा देख कर आप मुझ से परिहास नही कर सकते।

रु०—(गाम्भीर्य से) श्रीमती रत्ना! मैं आप से परिहास नहीं करता—नही कर सकता। डा० रुद्र ने जीवन भर किसी से परिहास नही किया।

र०—मुझे क्षमा करें डाक्टर, मैं इस समय अपने मे नही हूँ।

रु०—मै आपसे सिर्फ अपने सम्बन्ध मे सोचने के लिए कह रहा था जिससे आप मुझे दोष न दे।

र०—मै आपको दोष नही दूँगी। आप शीघ्र ही अपना प्रयोग करें। (अनुनय)

के०—(एक साथ ही) ठहरो, मै ऐसा नही होने दूँगा।

र०—नही, ऐसा होगा। मै इस समय आपका निषेध न मानूँगी।

के०—(धीरे-धीरे) मै नही चाहता रत्ना, कि तुम तुम अपनी जिन्दगी बर्बाद करो। मै तो मौत के करीब-करीब पहुँच गया। मेरे पीछे तुम क्यो अपनी दुनिया खराब करती हो?

र०—मेरी दुनिया अब रही कहाँ? आपकी इस दशा मुझे यही करना चाहिए।

के०—रत्ना, यह रस तुम मत पियो।

र०—मुझे पीने दीजिये।

के०—यदि मैं यह रस तुम्हे न पीने दूँ?

र०—ऐसी दशा में कदाचित् मुझे आत्म-हत्या करनी पड़े।

के०—ओह रत्ना ! रत्ना ! डा० रुद्र ! (उद्विग्न होते हैं)

रु०—प्रोफेसर, अगर श्रीमती रत्ना की इच्छा होगी तो वह रस वे पी सकती है।

र०—हाँ डाक्टर, मैं पीना चाहती हूँ।

रु०—ठीक है। अपना रस दूँगा। आप को अपने सिर पर हरा कपड़ा न बाँधना होगा। आप लोगो के मस्तिष्क की बनावट कपड़े की आवश्यकता नही रखती। केवल एक घूँट मे रस पी जाना होगा।

र०—मैं एक ही घूँट में पी लूँगी।

रु०—केवल अँधेरा करना होगा। आप के कुछ सोचने और कहने की आवश्यकता नही है। बुढ़ापे के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता नही होती। वह आप से आप आ जाता है। सिर्फ़ आँखे बन्द कर लीजिएगा।

र०—दीजिए वह रस मुझे।

रु०—अच्छी बात है।

[प्रकाश बुझ जाता है। बोतल के उठाने और रखने की पुनः आवाज आती है।]

र०—मैंने रस पी लिया डाक्टर !

के०—रत्ना, तुमने यह क्या किया !

र०—आप शांत रहिए, मुझे कोई कष्ट नहीं है।

रु०—आप कुछ अनुभव कर रही हैं, मिसेज़ रत्ना ?

र०—कुछ नही !

रु०—स्त्री के परिवर्तन मे कोई कठिनाई नहीं होती। अब आप भी बूढ़ी हो गईं, आप के सभी बाल सफेद हो गये होगे। अब मै उजेला करता हूँ।

[डा० रुद्र स्विच 'आन' करते हैं। प्रकाश मे दीख पड़ता है कि रत्ना पूर्ववत् ही बैठी है। उसके बाल सफेद नहीं हुए। वह पहले ही की तरह रूप-रग वाली है। प्रो० केदार फिर वैसे ही हो गये। उनके बालों की सफेदी दूर हो गई। वे पूर्ववत् बैठे मुसकरा रहे हैं।]

र०—(अपनी ओर देख कर) अरे, मुझ मे तो कुछ परिवर्तन नही हुआ। यह कैसा रस ? (प्रो० केदार की ओर देखती है। प्रसन्नता और उल्लास से) अरे, आप तो फिर वैसे ही हो गये ! (केदार के समीप जाती है) ओ डाक्टर, डाक्टर, ये फिर वैसे ही हो गये।

के०—(मुसकरा कर) हॉ मैं तो फिर वैसा ही हो गया !

र०—(हर्षातिरेक) रस तो मैंने पिया और अच्छे ये हो गये। आपका रस तो जादू है, डाक्टर !

रु०—(मुसकरा कर) श्रीमती रत्ना, प्रो० केदार का बुढ़ापा और आपकी जवानी एक सी हो गई, मालूम होता है। केदार और आप दोनो फिर वैसे ही हो गये।

र०—ओह डाक्टर आप क्या है, कुछ समझ मे नही आता !

[रत्ना हँसते-हँसते काउच पर बैठ जाती है। प्रोफेसर केदार मुसकराते हैं।]

रु०—(अत्यन्त शिष्टता के साथ) श्रीमती रत्ना, मै सब से पहले आपसे क्षमा माँगता हूँ।

र०—कैसी क्षमा ? (केदार से) देखिए, ये क्षमा क्यों माँगते हैं ?

के०—जो जितना बडा होता है, वह उतना ही नम्र होता है।

रु०—देवीजी, आप कितनी महान हैं। आपकी प्रशंसा मुझसे किसी प्रकार हो ही नही सकती। आपके दर्शन कर मैं धन्य हुआ।

के०—मैं धन्य हुआ डाक्टर ! ओफ, रत्ना भारत की रत्ना है।

र०—यह आप दोनो क्या कह रहे है ?

रु०—देवीजी, यह मेरा केवल एक परीक्षण था। न कोई बूढ़ा हुआ न जवान। थोड़ा-सा मनोविनोद होता किन्तु उससे आप को कष्ट हुआ। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

र०—(गम्भीर होकर) मै कुछ समझी नहीं डाक्टर !

रु०—मैं केवल नारी का मनोविज्ञान जानना चाहता था और इसके लिए मैंने आप के पति-देव प्रोफेसर केदारनाथ जो से आज्ञा ले ली थी। इन्होने स्वयं इस प्रयोग में दिलचस्पी ली। इन्होंने स्वयं एकान्त मे इस प्रयोग की रूप-रेखा खींची थी। मैंने 'अमर-यौवन' का रस तो आलमारी में बन्द कर दिया। केवल शर्बत आप लोगो ने पिया।

र०—(गम्भीर हो कर) अच्छा, तो आप लोगो ने मेरी परीक्षा ली !

रु०—जिससे आपका गौरव बढ़ा।

के०—मुझे सुख और सन्तोष मिला।

र०—डा० रुद्र, प्रशंसा के लिए धन्यवाद, किन्तु, इससे मुझे प्रसन्नता नही हुई।

रु०—इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

के०—(हाथ जोड़ते हुए) मैं भी……(उठ खड़े होते हैं)

र०—(बीच मे) अरे, यह क्या करते हैं? आप दोनो मुझे लज्जित करना चाहते हैं।

रु०—नहीं, आप वास्तव मे देवी हैं। मैं तो पहले ही जानता था कि आप सर्वगुण सम्पन्न हैं। आज संसार भी जान गया कि आपका आदर्श कितना महान है।

र०—अच्छा, यह बताइए डाक्टर, यदि आपका केवल यह प्रयोग था तो ये बूढ़े कैसे हो गये ?

के०—मैं बूढ़ा कैसे हो गया यह पूछना चाहती हो? पहली बार जब अँधेरा हुआ तो मैंने अपने सिर में चाक रगड़ ली। मैंने अपना सिर गीला कर ही रखा था। बाल सफेद हो गये। तुम्हे कुछ दूर कुर्सी पर इसलिए तो बिठला रक्खा था कि तुम आसानी से मेरे भेद को न जान सको।

र०—(कौतूहल से) ऐसी बात थी? आप बड़े वैसे हैं। फिर…आप फिर से कैसे पूर्ववत् हो गये? बालो की सफेदी क्या हुई ?

के०—जब दूसरी बार अँधेरा हुआ तो मैंने गीली टावल से अपना सिर फिर जोर से रगड़ लिया। सारी चाक टावल मे लग गई। मेरे बाल फिर पहले जैसे हो गये !

र०—(अन्यमनस्कता से) आप दोनो ने एक जाल रचा था। मैं तो लुटते-लुटते बच गई।

के०—इसके लिए मैं माफी चाहता हूँ। जुरमाने में मैं वही

सूर्योदय

(श्री कमलाकान्त वर्मा)

निर्झरिणी	एक नर्तकी
मंजरी	नर्तकी की सखी
समुद्रगुप्त	भारत के सम्राट्
चन्द्रसेन	सम्राट् के सामन्त
आचार्य शशांक	प्रसिद्ध कलाकार
जलधर	आचार्य शशाक के साथी

सैनिक, प्रहरी आदि

प्रथम दृश्य

[निर्झरिणी का शृङ्गार-गृह। दुग्ध-फेन से शुभ्र स्फटिक के एक मरकत-जटित आसन पर बैठी हुई निर्झरिणी वातायन में लगे चाँदी के तारों की बुनावट से झिलमिलाते नीलाशुक मे से छन कर आती हुई शशि-किरणों को अपने स्वर्ण-कंकणों में जड़े हुए हीरा-कणों की नोकों पर उछालती हुई अपने अन्तर की किसी सघन वेदना की कसक मानो अपने निश्वासों और उच्छ्वासों से सारे वातावरण में बिखेर देना चाहती है। निर्झरिणी के पीछे खड़ी मञ्जरी उसकी चोटियों में जूही की कलियाँ गूँथती हुई मानो रजनी के अञ्चल पर तारे उगाती जा रही है। पर

निर्झरिणी का उधर ध्यान ही नहीं है। उसकी आँखों के सामने है विश्व का मौन अंधकार, आँखों के भीतर है हृदय की मूक व्यथा और दोनों के बीच मे है इन हीरक कणों का नीरव कम्पन, जो मानो उसकी आतरिक बेचैनी की ही बाह्य अभिव्यजना बन कर बिखर रहा है।

रात्रि की नीलिमा और भी सघन हो गई है, चन्द्रमा के ऊपर से एक हलका धौल-सॉवला अभ्र-खड भागता चला जा रहा है, बहुत दूर पर कोई पत्ती न जाने क्यों रह-रह कर बोल रहा है, और तमी हवा के झोंके से वातायन का नीलाशुक फडफडा उठता है, और साथ ही निर्झरिणी आकाश मे अनन्त के प्रसार में न जाने कहाँ कहाँ विचरण कर अपने आप मे लौट सी आती है।]

नि०—समझा तूने मञ्जरी ?

म०—(एकाएक निस्तब्धता भंग होने से कुछ विस्मित सी हो कर) क्या ?

नि०—आर्यावर्त्त के एकातपत्र सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त······

म०—हाँ।

नि०—लक्ष्मी और सरस्वती के वरदानों का संगम उनकी राजसभा·· ··

म०—सही।

नि०—और उसकी प्रधान नर्तकी के रूप में उसका एक रत्न निर्वाचित की जाने वाली हूँ मैं—निर्झरिणी!

म०—तेरा अहोभाग्य, तेरे पूर्वजन्म के पुण्यो का उदय, जो तू सम्राट् समुद्रगुप्त की राज-सभा का एक रत्न बन कर···

नि०—रत्न मैं···मैं रत्न···पर मञ्जरी, यह रत्न होता क्या है ?

म०—प्रकृति की कलापूर्ण उँगलियों से सँवारे जा कर पत्थर के जिस टुकड़े मे सौंदर्य का सागर सिमिट कर जा बैठता है उसी को कहते हैं रत्न।

नि०—सौंदर्य का सागर ··पर सौंदर्य की भी कोई परिभाषा है ?

म०—सौंदर्य वही जो बहुमूल्य हो।

नि०—पर पृथ्वी के गर्भ और सागर के तले की जिस गहराई तक मूल्य लगाने वाला पारखी नही पहुँच पाता, वहाँ पड़े हुए उस रत्न का मूल्य क्या है ?

म०—कुछ भी नहीं।

नि०—इसलिए महत्त्व सौंदर्य का नही मूल्य का है। रत्न इसलिए रत्न नहीं है कि प्रकृति ने उसे वैसा बनाया है, किन्तु इसलिए कि संसार उसे वैसा समझता है। मेरा सौंदर्य, मेरी कला स्वतः महान् नहीं, उसे महत्त्व प्रदान करने के लिए सम्राट् की आँखो की आवश्यकता है। कला की महत्ता उसकी ऊँचाई नहीं, दूसरो की आँखों से उसपर बरसाया जाने वाला मूल्य है······किन्तु····

म०—किन्तु यह तो संसार का नियम है कि ··

नि०—कोई भी वस्तु अपने मूल्य के अनुसार ही ग्रहण की जा सकती है, यह संसार का नियम है। किन्तु इस नियम और मूल्य की पहुँच वहीं तक है जहाँ तक ग्रहण का आग्रह उसे खींच कर ले जाय···और मैं सोचती हूँ कि···(चाँदनी सामने से खिसक कर कोने में चली गई है, आकाश नक्षत्रों से वैसा ही जगमगा उठा है,

जैसे निर्झरिणी की वेणी जूही के फूलों से। सहसा एक काला मेघ चन्द्रमा को ढॅक लेता है। अंधकार मे हीरक कण मचल से रहे हैं। इतने में ही निर्झरिणी के हाथ पकड़ कर मजरी उसे अपनी ओर घुमा लेती है।)

म०—क्या सोचती है तू ?

नि०—जिस मदिरा को अधरो से लगा कर संसार पागल हो उठता है, संसार के अधरो तक पहुॅचने के लिए स्वयं वही क्यो इतनी पागल रहा करती है। संसार रत्न को ढूॅढता है उसके सौंदर्य के लिए, पर रत्न समुद्र-तल से जिसे ढूॅढने निकलता है वह क्या है ? मै सोचती हूॅ, संसार मे ग्रहण का इतना आग्रह क्यो ?

[सामन्त चन्द्रसेन का प्रवेश]

चन्द्रसेन—ग्रहण का आग्रह अस्तित्व का तकाज़ा है निर्झरिणी।

म०—सामन्त चन्द्रसेन !

नि०—अस्तित्व के तकाज़े से भी बड़ा एक तकाज़ा होता है सामन्त चन्द्रसेन, और वह होता है जीवन का। प्रत्येक जीवन अस्तित्व है, पर प्रत्येक अस्तित्व जीवन नही। अतः अस्तित्व का तकाज़ा चाहे कठोर कितना भी हो, पर उतना मर्मस्पर्शी नहीं होता जितना जीवन का। और जीवन का तकाज़ा क्या है, तुम्हे मालूम है ?

चन्द्रसेन—पर मै पूछता हूॅ, तुम जीवन को अस्तित्व से पृथक् करके क्यो देखती हो ?

नि०—इसलिए कि प्रायः अस्तित्व का तकाज़ा जीवन बलिदान की माँग बन कर आता है। अस्तित्व के झाड़-झंखाड़

मे जीवन फूल बन कर उगता है, पर वह उगता है इसलिए नही कि अपना पराग बेच-बेच कर उस झाड़-झंखाड़ को वह अपनी सार्थकता का हिसाब देता रहे, किन्तु इसलिए कि अपने उस पराग को दिशाओ मे लुटा कर वह विश्व को निधि बन सके। अस्तित्व और जीवन यही पृथक् है सामन्त !

च०—पर तुम यह क्यो भूल रही हो निर्झरिणी, कि जीवन के फूल को उसका प्राण-रस अस्तित्व का झाड़-झंखाड़ ही पहुँचाता है। उस फूल का पराग उसके मूल की सबलता पर ही''।

नि०—निर्भर है। सच है। पर प्रश्न यह है कि फूल के ऊपर मूल का ऋण क्या इतना बड़ा है कि फूल का सारा यौवन मूल की मुट्ठी मे गिरवी बन कर पड़ा रहे ?

च०—प्रकृति ने फूल को आकाश मे खिला कर और मूल पृथ्वी मे गाड़ कर यह एक अपरिवर्तनीय नियम बना दिया है कि

नि०—कि आकाश पर शासन पृथ्वी का ही रहे। प्रकृति का ऐसा अपरिवर्तनीय नियम ? असंभव !

च०—जिसे तुम अपने वीणा-विनिन्दित कंठ के समस्त तारो की सम्पूर्ण झंकृति से असंभव ठहराना चाहती हो, वही अपनी संभाव्यता सिद्ध करने के लिए भारत-सम्राट् के आज्ञा-पत्र के रूप में तुम्हारे सम्मुख आज आ खड़ा हुआ है ''''यह लो !

नि०—आज्ञा-पत्र ?

च०—हाँ तुम आज से भारत-सम्राट् की राजसभा का एक रत्न हुई।

नि०—रत्न ?

च०—और भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी! आज से तुम्हे राजकीय मर्यादा प्राप्त हुई, राजकोष तुम्हारे लिए खुला रहेगा, राजशक्ति तुम्हारी रक्षा करेगी। तुम्हारे अभिनन्दन मे कोटि-कोटि मस्तक झुका करेगे, तुम्हारी अभ्यर्थना मे कोटि-कोटि कंठो से जय-ध्वनि होगी, स्वयं अपने हाथो से सम्राट् तुम्हे सम्मान प्रदान करेगे · निर्झरिणी, इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक बधाई !

[आज्ञा पत्र देता है]

म०—निर्झरिणी! ··निर्झरिणी! (उसके गले से लग जाती है)

निर्झरिणी—(मजरी को अपने गले से छुड़ाने की चेष्टा करती हुई) और सामन्त चन्द्रसेन! यदि···यदि मै इस राज-सम्मान को आदर-पूर्वक अस्वीकार कर दूॅ तो ?

च०—तो ? निर्झरिणी, मै अकल्पनीय संभावनाओ की कल्पना मे अपना सर दुखाना नही चाहता।

म०—ऐसा कदापि नही हो सकता। निर्झरिणी, तू क्या पगली हो गई है ?

नि०—मै और पगली ? नही मंजरी, पागलपन की साधना का सौभाग्य उन्हे प्राप्त होता है, जिनका जीवन अस्तित्व का वशवर्त्ती नहीं। मुझे तो अब अपने जीवन को अस्तित्व का दिया हुआ ऋण चुकाने के लिए अपने सौंदर्य के कलश मे कला की मदिरा ले कर उसे बेचने के लिए लक्ष-लक्ष आँखो के सामने खडा होना ही पड़ेगा। मुझे रत्न बना कर आज संसार मुझे खरीदना चाहता है और मुझ मे···मंजरी, तुम धैर्य रखो···जीवन की इतनी

परिपूर्णता नहीं है कि संसार के आँके हुए मूल्य का अपमान कर मै अपने आप को बिकने से रोक सकूँ। मेरी अपनी ही आँखो मे मै और मेरा सब कुछ तभी तक महान् है जब तक संसार उसे महान् समझता है·· और तुम प्रसन्न हो मंजरी कि संसार मेरी इस लघुता को ही मेरा मूल्य बना कर मुझे खरीदने जा रहा है।

म०—पर तू यह सब कह क्या रही है ? मेरी तो कुछ समझ मे नही आता।

नि०—फिर भी मै कहती हूँ सामन्त चन्द्रसेन, एक बात तुम न भूलना। जिसे तुम प्रकृति का अपरिवर्तनीय नियम कहते हो, वह सचमुच इतना अपरिवर्तनीय नही है, जितनी तुम्हारी धारणा है। मै भले ही उसका परिवर्तन न कर सकूँ पर मैं ऐसी शक्ति की कल्पना कर सकती हूँ जो · जो · जो···

च०—रुक क्यो गई ?

नि०—यही कहने के लिए सामन्त, कि भारत-सम्राट् ने यह सम्मान प्रदान कर मेरे ऊपर जो कृपा की है, मैं उसके लिए कृतज्ञ हूँ और ··

म०—और ?

नि०—और उसे मै सविनय शिरोधार्य करती हूँ। सम्राट् की और क्या आज्ञा है !

च०—पूर्णिमा को राजसभा मे उपस्थित हो तुम्हे सम्राट् का उपहार ग्रहण करना होगा और उसी रात्रि को राजसभा में तुम्हारी कला का प्रथम प्रदर्शन होगा।

नि०—स्वीकार है।

च०—तो इस स्वकृति की सूचना सम्राट् को दी जा सकती है ?

नि०—अवश्य ।

च०—मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी निर्झरिणी, बधाई !

(प्रस्थान)

नि०—मुझसे ऐसी ही आशा थी ?

म०—हाँ, और सब से अधिक मुझे । (गले से लग जाती है)

नि०—मुझसे ऐसी ही आशा थी .उन्हे, तुझे मुझे भी, किन्तु क्या इस संसार मे आशातीत कुछ भी नही ? आशा के क्षितिज के उस पार.. (वातायन की ओर घूम जाती है । नीलाशुक में से उलझ कर आते हुए हवा के झोंके से उसकी चोटी के फूलों की पखुडियाँ सिहर उठती हैं । चाँदनी मे हीरक-कण एक बार फिर झिल-मिला उठते हैं । अपने आप में से निकल कर मानो फिर निर्झरिणी अनन्त मे विलीन हो जाती है ।)

द्वितीय दृश्य

[आचार्य शशाक का आश्रम । आश्रम के द्वार पर अंगूर की लताएँ झूल रही हैं, जिनमे से हो कर आती हुई प्रभात-किरणें दक्षिणी वायु की थपकियों के ताल पर मानो नर्तन कर रही हैं । एक कुशासन पर शशांक बैठे हैं, सामने वीणा है, बगल मे मृदग लिये जलधर । 'वीणा' का बजना, जान पडता है, अभी-अभी समाप्त हुआ है, क्योंकि आस-पास खड़े मृगशावकों की आँखों मे अभी भी उन्माद छलक रहा है । शशाक की आँखें मुँदी हुई हैं, जान पड़ता है उनके कानों में गूँजती हुई सगीत लहरी छाया-रूप धारण कर पलकों के नीचे नाचती फिर रही है । सहसा एक मृग-शावक उनका उत्तरीय पकड़ कर खींच लेता है और

उनकी आँखें खुल जाती है।]

शशांक—(मृग-शावक के मुख से अपना उत्तरीय छुड़ाते हुए) जलधर, इस वीणा के पतले तारो पर चढ़ कर आये हुए मेरी कला के संदेश को तुमने आज सुना ?

जलधर—जिस समय मेरे हाथो में मृदंग होता है शशांक, उस समय मैं केवल एक ही चीज सुनता हूँ और वह .

शशांक—वह वीणा नही होती और शायद इसीलिए तुम अभी नही समझ रहे आज मैं एक कितनी महान अनुभूति से टकरा गया हूँ । जलधर मेरी कला ने मुझे आज समझा दिया है कि पृथ्वी पर कलाकार ईश्वर का रचनात्मक प्रतिनिधि है और. .

जलधर—और शायद यह कि तुम भी उन्हीं कलाकारो मे से एक हो . ठहरो...देखूं तुम्हे ज्वर तो नहीं हो रहा है...(नाड़ी देखना चाहता है)

शशांक—(हाथ छुडा कर) मै कलाकार हूँ या नही प्रश्न इसका नही है। प्रश्न यह है कि कलाकार है क्या। और आज मुझे ध्रुव विश्वास हो आया है कि ईश्वर के निर्माण किये हुए विश्व का जो पुनर्निर्माण कर सके वही कलाकार है। कला की साधना ईश्वरत्व की चरम आराधना है।

जलधर—तब तो मंदिर मे बैठ कर पत्थर पूजने वाले को ही सर्वश्रेष्ठ कलाकार मानना होगा, क्योंकि—

शशांक—कदापि नहीं। ईश्वर ने मनुष्य की रचना की है और उत्तर मे मनुष्य ने रचना की है ईश्वर के एक प्रतिद्वन्द्वी की, जो मंदिरों और देवालयो मे बैठ कर नैवेद्य ग्रहण करता है और

राज-सिहासन पर बैठ कर राजस्व। संसार के सारे देवी-देवता, या राजा-महाराजा ईश्वर के उसी एक प्रतिद्वंद्वी के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं और उनके चरणो पर चढ़ाई हुई सारी भेंट मनुष्य की अपनी उपहासास्पद दुर्बलता का ही लज्जा-जनक मूल्य है। जलधर, सच पूछो तो ईश्वर के इस जघन्य प्रतिद्वंद्वी को अपदस्थ कर मानवता को वास्तविक ईश्वर-दर्शन के मार्ग पर खींच लाना कलाकार के जीवन का मुख्य औचित्य है।

जलधर—किन्तु यदि जीवन का ऐसा औचित्य सिद्ध करने से जीवन पर ही आ बने तो?

शशांक—तो कला की साधना सार्थक हुई।

जलधर—ना बाबा! तुम्हारी वीणा तुन्हे ऐसे संदेश भले ही सुनाया करती हो पर अपना मृदंग तो समझदार है। उसकी तो बस एक ही शिक्षा है—लय मे रहो, अर्थात् परम्परा का ध्यान रखो

सशांक—परम्परा! क्या है वह परम्परा? जो आज युग-युग से मंदिरो, राज-सिहासनो और अन्य वंदनीय स्थानो पर बैठ कर मनुष्य से उसकी अपूर्णता का कर वसूल कर रहा है, उसी की निर्धारित की हुई भावना के लिए न्यूनतम संघर्ष की रेखा ही तो? काश, मेरी कला की सावना मे इतनी क्षमता होती, मेरी वीणा के तारों मे इतना तनाव होता, मेरी उँगलियो मे इतना स्पंदन होता कि इस परम्परा को मैं ..कौन है? (बाहर दरवाजा खटखटाता है) अन्दर आइए! (सामन्त चन्द्रसेन का प्रवेश)।

शशांक—(उठ कर उनका अभिवादन करते हैं) किसके स्वागत

का सम्मान मुझे यह मिल रहा है ?

चन्द्रसेन—मैं हूँ सामन्त चन्द्रसेन।

शशांक—अहोभाग्य ! पधारिये (दोनों बैठ जाते हैं)। क्या सेवा करूँ ?

च०—आपको यह जान कर हर्ष होगा कि मै सम्राट् का आज्ञापत्र ले कर आपको सूचना देने के लिए उपस्थित हुआ हूँ कि आज से आप राजसभा के रत्नो मे से एक निर्वाचित किये गये हैं और ...

शशांक—राजसभा का रत्न मैं ? सामन्त ! क्षमा करेंगे, आप भूल तो नही कर रहे है ?

च०—भूल करने के लिए मैंने भारत के महान् गायक आचार्य शशांक को कष्ट नही दिया है। मैं जो कह रहा हूँ उसका अनुमोदन सम्राट् का आज्ञा-पत्र स्वयं करेगा। (आज्ञापत्र निकालते हैं)

श०—(रोक कर) मै समझ गया। सम्राट् ने मेरी गायन कला से प्रसन्न हो शायद मुझे यह अवसर प्रदान करने की कृपा की है कि मै अपनी कला से उन्हे और उनके पार्श्ववर्त्तियो को और भी प्रसन्न कर सकूँ, यही तो ?

च०—दूसरे शब्दो मे यों भी कहा जा सकता है कि आप आज से राजसभा के प्रधान गायक नियुक्त हुए हैं। आज से राजकीय साहाय्य, संरक्षण और सम्मान के आप अधिकारी होगे। आज रात्रि को राजसभा मे आप की कला के प्रदर्शन का आयोजन होगा। और वही सम्राट् अपने हाथो आपको रत्न निर्वाचित होने का सम्मानपत्र...

श०—सामन्त, क्या मै यह समझने की धृष्टता कर सकता हूँ कि मुझे अपनी राजसभा का रत्न निर्वाचित करने मे सम्राट् का अभिप्राय मेरी कला को और साथ ही मुझे सम्मानित करने का है?

च०—इसमे भी कोई संदेह हो सकता है ?

श०—तब आप सम्राट् को मेरी ओर से धन्यवाद देते हुए उनसे कृपया यह कह देंगे कि अपने जीवन मे सम्राट् की राजसभा का रत्न बनने से बढ़ कर दूसरा अपमान शशांक कोई नही मानता।

च०—यह'' यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?

श०—आप जो सुन रहे है उसके तीन कारण हैं। पहला यह कि कला की साधना मेरे लिए तपस्या है और उसका प्रदर्शन किसी के मनोविनोद के लिए नही किया जा सकता, दूसरा यह कि सम्राट् की राजसभा तक मेरी कला चल कर पहुँचे उससे अधिक आसान मै यह समझता हूँ कि राजसभा ही उठ कर मेरी कला के पास आवे और तीसरा यह कि, सामन्त आप क्षमा करेंगे, मेरी दृष्टि मे रत्न और वेश्या दोनो शब्द पर्यायवाची हैं। दोनो का महत्त्व और उनका मूल्य उनकी सुन्दरता है। आशा है, सम्राट् इस पदवी को अस्वीकार करने की मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे।

च०—आचार्य, आपके इस उत्तर से मुझे आश्चर्य हो रहा है!

श०—सामन्त, मेरी भावना आपके लिए इतनी अनपेक्षित है, मुझे इसका खेद है।

च०—पर राजा का वरदान अस्वीकृत होने पर शाप से भी अधिक भयानक हो सकता है, मह आपको मालूम है ?

श०—ज़रा सी ठेस लगने से ही जो वरदान अभिशाप बन

सकता है वह किसी राजा का ही हो सकता है, यह मुझे मालूम है और यह एक और महान कारण है कि मै उसे स्वीकार न करूँ।

च०—खैर, इस राजकीय सम्मान को स्वीकार करना न करना आपके हाथ है। पर सम्राट् की आज्ञा है कि आज आप राजसभा मे उपस्थित हो और......

श०—पर मैंने कोई अपराध तो किया ही नही।

च०—तो क्या राजसभा मे जो जाते हैं, सभी अपराधी ही होते हैं।

श०—बिना कोई अपराध किये राजसभा मे जाना स्वयं एक अपराध है।

च०—क्षमा करेंगे, इसका अर्थ मैं नही समझा।

श०—उसे न समझना ही आपके लिए अधिक लाभकर होगा सामन्त!

च०—तो फिर राजाज्ञा का पालन करने मे आपको आपत्ति है?

श०—मुझे आज्ञा दे सके, ऐसा मैं एक ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानता।

च०—अर्थात् आप सम्राट् के शासन के कायल नही।

श०—मैं ऐसे किसी शासन का कायल नहीं, जिसकी भुजाएँ लोहे की और जिह्वा अग्नि की हो।

च०—तो फिर...

श०—अपने सम्राट् की आज्ञा आपने मुझे सुना दी, अपनी आत्मा की आज्ञा मैंने आपको!

च०—किन्तु, यह राजाज्ञा का अपमान भी है और शासन

के प्रति विद्रोह भी !

श०—जिस सुन्दरता से आप अपराधों का नामकरण कर सकते हैं, यदि उतनी ही सुन्दरता से मैं वे अपराध कर सकता तो मैं अपने को कलाकार समझता। पर मेरा तो अपराध केवल एक ही है और वह है बिना कोई अपराध किये राजसभा में न जाने का सत्याग्रह !

च०—सत्याग्रह और दुराग्रह की सीमान्त-रेखा बहुत ही सूक्ष्म होती है आचार्य !

श०—पर रेखा उसी को कहते भी हैं जिसकी चौड़ाई केवल कल्पनागम्य हो।

च०—फिर भी आपका सत्याग्रह मुझे दुराग्रह लगे, इसे आप असंभव तो नहीं मानते ?

श०—राजाज्ञा को पालन कराने का व्यवसाय करने वाला सत्याग्रह को समझ सके इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी असंभव नहीं मानता।

च०—तो फिर मेरे कर्तव्य का अनुरोध है, क्षमा करें, कि मैं आपको बन्दी बना लूँ।

श०—यदि आप कर्तव्य का कोई अस्तित्व मानते हैं, तो उसके अनुरोध का आप सहर्ष पालन करें।

जलधर—पर जब तक मैं जीवित हूँ तब तक. .

श०—शांत जलधर, मेरे सत्याग्रह का प्रधान अस्त्र है अहिंसा, यह तुम भूल रहे हो। सामंत, आप मुझे बन्दी बनाएँ, मैं तैयार हूँ।

च०—पर आचार्य इसका परिणाम क्या होगा आपको

मालूम है ?

श०—सत्य का एक ही परिणाम होता है और वह है विजय !

च०—पर सत्य और विजय के बीच मे ·

श०—कितने युग लगेंगे और मुझे जन्म और मरण के कितने द्वार लाँघने पड़ेंगे इसकी मुझे चिंता नही। मुझे आप बन्दी बना सकते हैं। (एकाएक जलधर आ कर शशाक के गले से लग जाता है।)

जलधर—शशांक !

श०—जलधर !

जलधर—यह··तुम क्या कर रहे हो ?

श०—मेरी कला ने मुझे जो संदेश भेजा है मैं उसी का प्रयोग करने जा रहा हूँ। मुझे ईश्वर से ही पूछना है, उसका अपना प्रतिनिधित्व अधिक कौन कर सकता है, निर्माण करने वाला कलाकार या विनाश करने वाला सम्राट् सामंत !

च०—मेरे कर्तव्य की कठोरता के लिए मुझे क्षमा करेंगे आचार्य ! (ताली बजाता है, तीन सैनिकों का प्रवेश !)

श०—मनुष्य को ईश्वर से ही क्षमा माँगना शोभा देता है

[पटाक्षेप]

तीसरा दृश्य

[सम्राट् समुद्रगुप्त की राजसभा। स्फटिक-निर्मित विशाल मण्डप में रत्नालंकृत स्वर्ण-सिंहासन पर सम्राट् समुद्रगुप्त और अन्य आसनो पर सभासद बैठे हैं। मण्डप के स्वर्णिम प्रदीपों के साथ पूर्णिमा की रजत किरण माला का गगा जमनी आलोक सभा-भवन मे जुड़े हुए मणि माणिक्यों से टकरा कर और भी प्रखर हो उठा है और उसी आलोक-

वर्षा मे राशि-राशि हीरककणों से आच्छादित ओस की बूँदो से भीगी हुई सुकुमार लता वेलि की तरह खडी है नर्तकी निर्झरिणी। वीणा का मधुर-सगीत, मृदंग का जलद-गम्भीर निर्घोष और उसमे नर्तकी के पायलों की झीनी रुनझुन, जान पड़ता है स्वर की त्रिवेणी लहरा आई है। इतने ही मे मानो एकाएक बिजली कौध गई; नर्तकी के पॉवों मे मानो उनचास पवनो का वेग भर गया, मडप मे एक सौंदर्य-शिखा तडिद्वेग से घूम गई और मालूम नहीं कितनी देर तक राजसभा मन्त्र विमुग्ध सी निर्निमेष बैठी रही पर जब वह सचेत हुई तो देखा नर्तकी निर्झरिणी नतमस्तक हाथ जोड़े खड़ी है—नृत्य समाप्त हो गया है। सभा मे करतल ध्वनि होती है और सम्राट् अपने गले से मौक्तिक माल निकाल कर निर्झरिणी की ओर बढाते हैं। सामन्त चन्द्रसेन का प्रवेश।]

स०—(हार उसे देते हुए) नर्तकी निर्झरिणी, तुम भारत की नृत्य कला की सजीव प्रतिमा हो और मुझे गर्व है कि आज अपनी राजसभा के रत्न के रूप मे तुम्हारा सम्मान कर रहा हूॅ—बधाई!

(निर्झरिणी हार ले कर सम्राट् का अभिवादन करती है।)

च०—(सम्राट् को अभिवादन करते हुए) सम्राट्!

स०—मित्रो, अभी तक आपने नाचती हुई बिजली का चमकना देखा, अब अमृत बरसाने वाले मेघ का गरजना सुनिए। सामन्त चन्द्रसेन, हम लोग आचार्य शशांक की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, उन्हे राज-सभा मे सादर ले आओ।

च०—पर सम्राट्।

स०—क्यो ?

च०—आचार्य शशांक ने राजसभा का रत्न बनना अस्वी-

कार कर दिया। (निर्झरिणी चौंक उठती है)

स०—अस्वीकार ?

च०—हाँ सम्राट् !

स०—इसका अर्थ ?

च०—मुझे भय है इसका अर्थ है राजाज्ञा के प्रति आचार्य का...

स०—रुक क्यो गये ?

च०—सम्राट शायद उसे सुनना पसन्द नही करेंगे।

स०—राजाज्ञा के प्रति अवज्ञा ?...पर सामन्त चन्द्रसेन, राजाज्ञा के पालन के लिए तुम आचार्य शशांक को राजसभा में उपस्थित होने के लिए बलपूर्वक बाध्य भी तो कर सकते थे ?

च०—राजाज्ञा के उल्लंघन के अपराध में मैं आचार्य को बंदी कर ले आया हूँ सम्राट् !

स०—उन्हे उपस्थित करो।

[चन्द्रसेन एक सैनिक को सकेत करता है। सैनिक बाहर जाता है। सम्राट् निर्झरिणी की ओर देखते हैं, निर्झरिणी बादलों से आँख-मिचौनी खेलते हुए पूर्ण चन्द्र की ओर ! सभा में पूर्ण निरतब्धता छा रही है, इतने में ही गम्भीर गति से गैरिक वस्त्र पहने आचार्य शशाक प्रवेश करते हैं। उन्हें देख कर एक बार किसी अज्ञात भावना से निर्झरिणी सिहर-सी उठती है, पर तुरन्त आँखें फेर कर वह देखने लगती है एक पतंग की ओर, जो एक जलते हुए दीपक के सामने खडा है; उसकी ज्वाला के साथ अपने साहस को तौलना चाहता है। शशाक धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं और शात मौन सभा के मध्य में आ कर खड़े हो जाते हैं।]

स०—आचार्य शशांक, यह मै क्या सुन रहा हूँ ?

श०—एक कठोर सत्य, जो कानो से अधिक हृदय को लक्ष्य करके कहा गया है।

स०—और वह सत्य शायद यह है कि राजसभा का रत्न निर्वाचित होना आप अपने लिए अपमानसूचक समझते हैं।

स०—मै उसे किसी भी कलाकार के लिए अपमानसूचक समझता हूँ।

[निर्झरिणी एक बार उनकी ओर देख कर आँखे नीची कर लेती है।]

स०—जानते हैं आप किससे बातें कर रहे हैं ?

श०—भारत-सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त से।

स०—और यह भी कि भारत-सम्राट् की राजसभा में आमन्त्रित होने का गर्व प्राप्त करने का अवसर प्रदान कर आपको और आपकी कला को कितना महत्त्व दिया गया था ?

श०—मै मानता हूँ कि मुझे अवसर दिया गया था कि मैं अपने आप को बेच सकूँ।

स०—संगीतकला के प्रदर्शन को क्या बिकना कहते हैं ?

श०—हाँ, यदि वह प्रदर्शन हार्दिक शांति के लिए न हो कर केवल मनोविनोद के लिए हो।

स०—शांति ! पर आपके जिस गले से शांति की यह स्रोतस्विनी बहती है, मेरी भृकुटि के एक हलके संकेत से उसकी क्या अवस्था हो सकती है आप जानते हैं ?

श०—यदि ईश्वर मिट्टी को छू कर सोना बना देने की शक्ति रखते है तो सम्राट् भी सोने को छू कर मिट्टी बना देने की शक्ति

रखते हैं, यह मैं जानता हूँ।

स०—आचार्य शशांक, जिसे मैंने अपनी राजसभा का रत्न बनाना चाहा था उसे धूल मे मसल देने के लिए बाध्य होने पर सच मानिए मुझे खेद होगा।

श०—आपकी सचाई पर मुझे उतना ही विश्वास है, जितना आपको मेरी इस सचाई पर होना चाहिए कि आपकी राजसभा के विलासमय अस्तित्व की विराट् व्यर्थता को ढोने के बदले जीवन के कल्याण के लिए मै दर-दर भटकती फिरने वाली धूल मे मिल जाना अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ।

स०—पर धूल मे उडने के लिए सूखने की आवश्यकता होती है आचार्य!

श०—सूखना तो तपस्या है सम्राट्!

स०—और तपस्या का मूल्य है मृत्यु!

श०—यह तपस्या की बहुमूल्यता है।

स०—पर तपस्या जीवन का केवल एक मार्ग है, अन्त नही।

श०—तपस्या वह मार्ग है जिसका प्रत्येक पग स्वयं एक अन्त होता है और जिस के अन्तिम पग तक कोई पहुँच ही नही सकता। तपस्या अपने आप के लिए होती है, किसी अन्त के लिए नही।

स०—पर अन्त आता है।

श०—तपस्या का नही, तपस्या करने वाले का।

स०—पर जब वह अन्त मृत्यु का द्वार बन कर आता है, तो तपस्या करने वाला कैसा भी हो, उसे झुकना ही पड़ता है।

श०—किसी द्वार को पार करने के लिए झुकना उसे सिर

झुकाना नहीं है।

स०—आचार्य! आपको अपने प्राणो का भय नही है?

श०—प्राणो के निकलने का भय करना प्राण डालने वाले का अपमान करना है!

स०—आचार्य!

श०—सम्राट्!

स०—आप अपने जीवन से खेल रहे है।

श०—सारी सृष्टि ही खेल है।

स०—लेकिन खेल के भी नियम होते है।

श०—नियम सत्य होते है और सत्याग्रह सब से बडा नियम है।

स०—तो क्या आप समझते है, सत्य को अकेले आप ही पहचानते है?

श०—सत्य अकेला मेरा ही नही है, पर जो सत्य मेरा है उसे दूसरो के सत्य के विरोध मे खड़ा करने मे मुझे संकोच नहीं।

स०—राजाज्ञा का पालन होना चाहिये, यह एक महान् सत्य है।

श०—ईश्वराज्ञा राजाज्ञा से बड़ी है, यह उससे भी महान् सत्य है।

स०—पर ईश्वर राजा की जिह्वा से ही बोलता है।

श०—जो ईश्वर केवल राजा की जिह्वा से बोलता है उसे कलाकार अपना ईश्वर नहीं मानता।

स०—आचार्य! यह राज-द्रोह है!

श०—यह जो कुछ भी है, मेरा विश्वास है।

स०—लेकिन इसका मूल्य ?

श०—आप जो वसूल कर सकें, वह सब कुछ।

स०—तो · तो···(एकाएक निर्झरिणी उठती है और झपट कर सम्राट् के चरणो पर गिर पड़ती है)

नि०—सम्राट् ! क्षमा ·क्षमा · क्षमा···

स०—(उसे उठाते हुए) नर्तकी ! क्षमा किसे···किस बात की ?

नि०—अपराध बड़ा होता है, पर क्षमा उससे भी बड़ी हो सकती है। जो अपने सत्य के आग्रह का साहस रखता है उसे उसके सत्य की सदोषता के दण्ड के साथ उसके साहस का पुरस्कार भी मिलना चाहिए।

स०—नर्तकी ! साहस का पुरस्कार एक बार मिल सकता है पर सत्य की सदोषता का दण्ड बार बार मिलता रहेगा। तुम स्वयं आचार्य से ही पूछो वे क्षमा चाहते है ?

नि०—(शशाक की ओर घूम कर) आचार्य, मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे, आत्महत्या कोई वीरता नहीं है !

श०—देवि, क्या किसी भी ऐसे बलिदान को आप कल्पना कर सकती है जो आत्म-हत्या न हो ?

नि०—पर समुचित बलिदान के लिए जीवन मे अवसरो की कमी नही।

श०—अवसर बुलाये नहीं जाते, वे स्वयं आते हैं और आने पर उन्हे लौटाया नही जा सकता।

नि०—लौटाया जा सकता है आचार्य ! सब कुछ लौटाया जा

सकता है, मृत्यु भी लौटाई जा सकती है, आप स्वयं न लौटाएँ मुझे अधिकार दें, मैं ··

श०—जिस मृत्यु को मेरा विश्वास, मेरे जीवन का रस ही आमंत्रित कर रहा है उसे आप कितने दिनों तक लौटा रखेंगी। दण्ड पा कर मरना मेरे लिए क्षमा पा कर जीने से अधिक श्रेयस्कर होगा।

नि०—तो क्या यह आपका अन्तिम निश्चय है ?

श०—यह मेरा निश्चय नहीं, मेरे सत्य का फैसला है और वह तो मेरे लिए अन्तिम ही हो कर रहेगा।

नि०—तो क्या 'क्या'···

श०—हाँ देवि ! आपकी इस अतिशय ममता-भावना के लिए आपको धन्यवाद देने के साथ यह कहने की भी मुझे अनुमति दें कि अपने जीवन को अपने विश्वासों की प्रयोगशाला बना कर मैंने अब उसे इस योग्य नहीं छोड़ रखा है कि इसपर कोई अपनी ममता के एक बूँद का भी अपव्यय करे। मुझे क्षमा करें देवि !

नि०—ओह ! ··(हाथों से आँखें मूँद लेती है)

स०—सामन्त चन्द्रसेन ! नर्तकी को विश्राम-गृह में ले जाओ। (चन्द्रसेन निर्झरिणी को ले कर जाता है) आचार्य, आप अपनी दण्डाज्ञा सुनने के लिए तैयार हैं ?

श०—सुनने के लिए ही नहीं उसका स्वागत करने के लिए भी।

स०—तो कल सूर्योदय से पूर्व आपको पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर से नदी में फेंक दिया जायगा। अब तो आप संतुष्ट हैं ?

श०—पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर से मैं अपने विश्वास की जय-घोषणा कर सकूँगा, मुझे इसका संतोष ही नहीं, उल्लास भी है। (सम्राट् सकेत करते हैं, सैनिक आचार्य की ओर देखते हैं। गम्भीर भाव से आचार्य शशांक का प्रस्थान।)

स०—मैंने क्या करना चाहा था और यह क्या हो गया?·· ·· सोचना होगा···(प्रस्थान)।

[पटाक्षेप]

चतुर्थ दृश्य

[निर्झरिणी का शयन-कक्ष। आपादमस्तक कृष्णवस्त्र पहने निर्झरिणी एक स्वर्ण-दीप सम्मुख रखे कुछ लिख रही है। पीछे से मंजरी सवेग प्रवेश करती है, पर निर्झरिणी को लिखने में व्यस्त देख कर सहम जाती है। थोड़ी देर तक उसके पीछे खड़ी रह कर वह खिड़की की ओर बढ़ती है और उसके पल्ले खोल देती है। वायु का एक झोंका आता है और दीपशिखा तिलमिला उठती है। लिखना बन्द कर निर्झरिणी पीछे की ओर देखती है तो मंजरी खड़ी है।]

मंजरी—(उसके सम्मुख आ कर) यह क्या निर्झरिणी, तू कहीं बाहर जा रही है?

नि०—हाँ!

मं०—इतनी रात्रि को?

नि०—क्यों, रात्रि क्या केवल सोने के लिए ही होती है?

मं०—मेरा अभिप्राय है कि···

नि०—मुझे अभी तेरा अभिप्राय सुनने से अधिक आवश्यक काम करना है, अभी तू जा।

मं०—पर सखी, इतना सुने बिना तो मैं नही जाऊँगी कि आज राजसभा मे ··

नि०—हुआ क्या ? मैं रत्न बनी, मुझे मेरा मूल्य मिला और मैं चली आई। अच्छा तू जा।

मं०—नही, नही, तुझे मेरी बातो का उत्तर देना ही होगा। तूने नृत्य किया ?

नि०—हाँ।

मं०—नृत्य देख कर राजसभा चकित हो गई ?

नि०—हाँ!

मं०—फिर सम्राट् ने अपने हाथो तुझे सम्मान-पत्र दिया ?

नि०—हाँ! हाँ! हाँ!

मं०—और तब तूने·· तूने अरी, यह क्या ? तू रो रही है ? (निर्झरिणी की आँखों की ओर देखती है)

नि०—मैंने तुझसे कह दिया न, तू अभी जा!

मं०—निर्झरिणी! अपने मन की व्यथा तू मुझसे भी छिपायेगी ? (उसके आँसू पोछती है)

नि०—मंजरी, खुले बाजार मे जो बिक चुकी हो अब उसके छिपाने को है ही क्या ? (उसकी गोद मे मुँह छिपा लेती है।)

मं०—यह तेरी भ्रांत भावना है निर्झरिणी! तू भूल रही है कि भारत-सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त की राजसभा का रत्न बन कर तू···

नि०—बन गई है एक मदिरा जिसका जीवन सबका उन्माद है। मंजरी, मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ, अब तू मुझसे इसकी चर्चा न कर।

मं०—यह तू क्या कह रही है निर्झरिणी ? अच्छा यह तो बता सम्राट् तेरी कला से प्रसन्न तो हुए ?

नि०—सम्राट् की प्रसन्नता है यह मोतियों की माला, अप्रसन्नता मृत्यु। माला सर झुकाये रखने वाले को, मृत्यु सर उठाये रखने वाले को! मैंने माला ग्रहण की उसने मृत्यु, मैंने अपनी पराजय का मूल्य लिया, उसने अपनी विजय का मूल्य चुका दिया, मैं जिसके हाथों बिक गई उसे उसने खरीद लिया। वहाँ वह है और उसका मोक्ष और यहाँ मैं हूँ और मेरा मूल्य! (गले से माला निकाल कर फेंक देती है)

मं०—पर यह तू बातें किसकी कर रही है ?

नि०—जो मेरी आशा के क्षितिज के उस पार था, पर जिसकी पगध्वनि मैं अपनी कल्पना मे निरतर सुना करती थी।

मं०—पर वह है कौन ?

नि०—जिसे मूल्य की लंबी से लंबी रेखा नहीं बाँध सकती।

मं०—मैं पूछती हूँ, वह है क्या ?

नि०—जो कि मैं होना चाहती थी, हो न पाई।

मं०—पर उसका नाम क्या है ? (चन्द्रसेन का प्रवेश)

च०—आचार्य शशांक।

नि०—यह नाम तो उसके शरीर का है सामन्त! उसकी आत्मा का नाम है—कलाकार।

च०—'कलाकार' की जितनी अच्छी व्याख्या तुम कर सकती हो, उतनी कर सकना मेरे लिए तो सम्भव नहीं है नर्तकी निर्झरिणी, पर इतना अनुभव करता हूँ कि कला के लिए लोक-कल्याण

कर सकने का सबसे प्रशस्त मार्ग है राज-शक्ति का संरक्षण प्राप्त करना, और वह संरक्षण जब स्वयं किसी के द्वार पर आया हो, उसे ठुकराना कला के अस्तित्व पर कुठाराघात करना है।

नि०—सामन्त, जिस दृष्टिकोण से तुम कला को देखते हो, क्षमा करना, उसमे सब से बड़ा विकार यही है कि वह केवल शरीर को स्पर्श कर पाता है, आत्मा को नहीं, केवल अस्तित्व को पहचान सकता है, जीवन को नहीं। कला की चर्चा करते समय तुम्हारा ध्यान केवल इसी पर है कि अस्तित्व के संघर्ष मे उसका क्या उपयोग हो सकता है, इस पर नही कि अस्तित्व के संघर्ष से अवकाश-प्राप्त क्षणो मे मुक्त जीवन उसका क्या उपयोग कर सकता है। तुम्हारे लिए कला औषध-सेवन है, अमृत-पान नहीं।

च०—तो तुम क्या कला का लक्ष्य लोक-कल्याण नहीं मानती ?

नि०—यदि कल्याण का अर्थ तुम मानते हो केवल भौतिक वेदनाओं से परित्राण पाना, तो नहीं। कला की साधना का केवल नकारात्मक महत्त्व नही है, वह मुख्यतः स्वीकारात्मक है। कला को किसी कल्याण का साधन बन कर नही जीना है, इसलिए कि वह स्वयं कल्याणरूपिणी है, उसे किसी लक्ष्य का मार्ग बन कर नही रहना है, क्योंकि वह लक्ष्यस्वरूप है।

च०—पर कला को यह जो रूप तुम दे रही हो निर्झरिणी, वास्तविकता से उसकी कुछ भी एकाकारिता हो सकती है या नहीं मुझे इसमे सन्देह है।

नि०—रुग्णावस्था मे संसार की सारी वास्तविकता औषध के कुछ बूँदों मे ही सिमट कर आ बैठती है, पर इससे न तो औषध

मनुष्य का स्थायी भोजन बन सकती है, न रुग्णावस्था उसका स्थायी जीवन। रोगिणी मानवता यदि आज कला का स्वाद न पहचान सके तो इसमे दोष कला का नही है। कला अमृत है, पर उसकी मादकता को सँभाल सके, ऐसा शरीर नन्दनवन की मिट्टी का ही बना हुआ हो सकता है। और सामन्त! वही है वह शरीर जिसे तुम कहते हो आचार्य शशाक!

च०—पर आचार्य शशांक को कलाकार बनने के लिए सम्राट् के दिए हुए समानपूर्ण निमन्त्रण की ऐसी तिरस्कारमय अवहेलना करना आवश्यक ही था, यह मानने के लिए मै तैयार नही।

नि०—और वह इसलिए कि जिसे सम्मानपूर्ण निमन्त्रण का आवरण पिन्हा कर सम्राट् के उपहार के रूप में तुम लिये फिरते हो उसकी तह मे से दूसरो की दुर्बलताओ का कितना क्रूर उपहास और राजदण्ड के पशुबल का कितना घोर दंभ झाँक रहा है शायद इसपर तुमने ध्यान नहीं दिया।

च०—तो क्या तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है निर्झरिणी, कि अभी तक सम्राट् के निमन्त्रण को जिस किसी ने भी स्वीकार किया है उसने केवल या तो लोभ के वशवर्ती हो कर नही तो भय के?

नि०—इससे भी अधिक सामन्त मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अभी तक सम्राट् को जिस किसी ने सम्राट् कहा है उसके हृदय मे लोभ भी रहा है, आँखो मे भय भी।

च —तुम्हारे साथ भी क्या यही सच है?

नि०—मेरे साथ भी और तुम्हारे साथ भी। पर यदि इसका कोई अपवाद हो सका है तो वही जो कल सूर्योदय के पूर्व अपने

विश्वास का मूल्य अपने प्राणों से चुकाने वाला है।

मं०—कौन ? आचार्य शशांक ?

नि०—हाँ, और सामन्त, तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि निर्झरिणी ने प्रतिज्ञा की है कि या तो वह आचार्य के प्राण बचायेगी और नहीं तो उन्हीं के पथ पर चल कर अपना भी प्राणोत्सर्ग करेगी।

च०—निर्झरिणी !...

मं०—यह तू क्या कह रही है ?

नि०—और यह लो सामन्त, भारत-सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त की राजसभा के रत्न-पद से नर्तकी निर्झरिणी का यह त्याग-पत्र। तुम मेरी ओर से सम्राट् से निवेदन कर देना कि उन्होने मुझपर जो इतनी कृपा की और मेरी कला की प्रशंसा मे सौजन्य भरे जो थोड़े शब्द कहे, उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उन्हे अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई भी मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि इस रत्न-पद के लिए आचार्य शशांक के हृदय में ऐसी कोई भावना न थी, जो इस समय मेरे हृदय मे न हो, और इस पद का त्याग कर अपने विश्वास का ऐसा कोई मूल्य नही जिसे आचार्य से वसूल किया जा सके और मैं न चुका सकूँ।

[निर्झरिणी चन्द्रसेन के हाथ मे अपना त्याग पत्र देती है, मजरी झटपट निर्झरिणी के हाथ पकड़ लेती है]

च०—किन्तु ...किन्तु

नि०—सामन्त, जिस दिन मैंने रत्न-पद ग्रहण किया था, उस दिन तुमने कहा था—'मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी निर्झरिणी !'

और आज जब कि मैं उस पद का त्याग कर रही हूँ, तब भी तुम्हारे मुख से मैं वे ही शब्द सुनना चाहती हूँ। उस दिन तुमने मुझे बधाई दी थी सामन्त, क्या आज नहीं दे सकोगे?

च०—यह असम्भव है निर्झरिणी! तुम नहीं समझती कि तुम क्या कर रही हो।

नि०—मै जो कुछ कर रही हूँ वह उसका शतांश भी नही है जो आचार्य शशांक कर चुके है। और उन्होने जो कुछ किया उसे समझने का दावा मुझसे अधिक कौन कर सकता है?

च०—पर इसका परिणाम?

नि०—इसकी चिता मुझसे अधिक उसे होनी चाहिए जिसके शब्दो से परिणाम टपका करते हैं...पर अब यह प्रसंग यहीं तक।

च०—परन्तु...

नि०—कुछ नही। मेरी एक बात सुनो। अपनी एक चीज थोड़े समय के लिए मुझे उधार दे सकोगे?

च०—क्या?

नि०—अपनी वह अँगूठी।

च०—पर यह तो केवल मेरा सामंत-पद का चिह्न है जिससे...

नि०—इसी से तो माँगती हूँ। मै इसका दुरुपयोग नही करूँगी, तुम्हे इसका विश्वास होना चाहिए।

च०—मुझे विश्वास है। (अँगूठी अपनी ऊँगली मे से उतार कर निर्झरिणी को पहना देता है) और कुछ?

नि०—और तुम्हारी बधाई?

च०—नहीं निर्झरिणी, मैं फिर कहता हूँ तुम सोचो...

समझो'' और लौटा लो! (त्यागपत्र लौटाना चाहते हैं)

नि०—तुम्हारी आज्ञा मैं नहीं मान सकूँगी, इसका मुझे खेद है सामन्त, फिर भी तुम मेरे वंदनीय हो, मेरी इस नई जीवन-यात्रा की प्रस्थानवेला मे मुझे बधाई न दे सको तो कम से कम आशीर्वाद तो दो' (नतमस्तक होती है)

च०—निर्झरिणी!' (गला भर आता है)

नि०—अच्छा, क्षमा करना, मुझे शीघ्रता है' मंजरी, तुम से फिर मिलूँगी ''(उसे चूमती है और फिर सवेग चली जाती है)

मं०—निर्झरिणी'''निर्झरिणी!' (प्रस्थान)

[सामन्त चन्द्रसेन हाथ में त्याग-पत्र लिये खड़े रह जाते हैं। सामने का स्वर्णदीप मॅझाता जा रहा है, फिर एक लम्बी लौ फेंक कर वह बुझ जाता है। धीरे-धीरे सामत का प्रस्थान।]

पंचम दृश्य

[पर्वत शिखर पर कारागृह। ऊँचे, नुकीले पर्वतीय वृक्षों के नीचे छाया और आलोक गाढ़ालिंगन में बॅधे सो रहे हैं। रात्रि की निस्तब्धता वन्य पशुओं के कर्कश चीत्कार और वायु के झोंकों से खड़खड़ा उठने वाले गिरे हुए सूखे पत्तों के हिलने से रह-रह कर भग हो जाती है। आकाश में चॉदनी के साथ बादलों का मूक अभिनय चल रहा है और कारागृह के पीछे हो कर बहने वाली पहाडी नदी की निर्विराम कल-कल ध्वनि मानो पृष्ठ-संगीत प्रदान कर रही है। कारागृह के लौहद्वार के सामने दो प्रहरी नंगी तलवारें लिये घूम रहे हैं। कृष्णवसना, निर्झरिणी का प्रवेश।

एक प्रहरी—कौन है?

नि०—एक स्त्री।

दूसरा—इस समय इधर आने का प्रयोजन ?

नि०—मैं आचार्य शशांक के दर्शन करना चाहती हूँ।

पहला प्रहरी—आपके पास कोई आज्ञापत्र है ?

नि०—हाँ, यह अँगूठी। (अँगूठी देख कर प्रहरी निर्झरिणी का अभिवादन करते हैं)

पहला प्रहरी—मै अभी आचार्य को सूचना देता हूँ।

नि०—आचार्य क्या विश्राम कर रहे है ?

दूसरा प्रहरी—नही, वे ध्यान-मग्न है।

नि०—तो फिर मै ही उनके पास क्यो न चलूँ ?

पहला प्रहरी—कारागृह मे महिलाओ का प्रवेश करना नियम-विरुद्ध है। आप ठहरें, मै उन्हे अभी सूचना देता हूँ। (प्रस्थान)

[आकाश मे काले मेघ उड़ते चले जा रहे हैं, वायु के वेग से निर्झरिणी का काला अचल फहरा उठता है। वृक्षों की काली छाया हिल-डुल कर करवट बदल फिर सो रहती है। प्रहरी के साथ आचार्य शशाक का प्रवेश। निर्झरिणी सर झुका कर नमस्कार करती है। दोनो प्रहरी दूर चले जाते हैं।]

श०—देवि निर्झरिणी! इस समय यहाँ आप ?

नि०—मुझे 'तुम' कहो शशांक! मेरा जीवन तुम्हारे अधिक से अधिक निकट पहुँचना चाहता है।

श०—तुम सबसे अधिक सत्य के निकट पहुँचने की चेष्टा करो! देवि ! वही तुम्हे वहाँ पहुँचायेगा, जहाँ मैं जा रहा हूँ।

नि०—पर तुम नही जा सकोगे शशांक! मै तुम्हे लौटा ले

चलने को आई हूँ।

श०—मैं जिस पथ पर चल रहा हूँ वह इतना संकीर्ण है कि घूम कर लौटने की उसमे जगह ही नहीं। उसपर तो केवल आगे ही बढ़ा जा सकता है।

नि०—पर तुम चाहो तो उस संकीर्ण पथ को भी विस्तृत बना सकते हो। तुम केवल पथिक ही नही, पथ-निर्माता भी हो।

श०—मुझ पर इतनी श्रद्धा की वर्षा कर शायद तुम अपनी बुद्धि के साथ अन्याय कर रही हो देवि! पथ का अनुसंधान करना पथ का निर्माण करना नही है।

नि०—पर जिसने आगे बढ़ने के पथ का अनुसंधान किया वह क्या पीछे लौटने के पथ का अनुसंधान नही कर सकता?

श०—ऐसा अनुसंधान किया हुआ पथ, पथ नही रह जायगा।

नि०—मैं इसे नहीं मानती। जीवन के कल्याण के लिए जीव को जिस दशा मे भी चलना पड़े वही पथ है। और इस समय जीवन का कल्याण तुम्हारे प्राणो की रक्षा चाहता है?

श०—पर मेरे पथ-भ्रष्ट हो स्वप्राण-रक्षा करने से जीवन का कोई कल्याण हो सकता है, यदि मै इसे न मानूँ तो।

नि०—शशांक, तुम अपने जीवन के इतने निकट हो कि उसके मूल्यांकन का तुम्हारा मापदण्ड गलत हो यह असंभव है, कम से कम इतना तो तुम मानते हो?

श०—मेरा मापदण्ड गलत है, यह असंभव नही, पर केवल प्राण-रक्षा के लोभ से मै उसे गलत मानने लगूँ, यह असंभव है।

नि०—किन्तु मै तो तुम्हे लोभ तुम्हारी प्राण-रक्षा का नहीं

'जीवन के कल्याण का दिलाने आई हूँ।

श०—तो क्षमा करना, ऐसे जीवन के कल्याण मे मुझे विश्वास नही है, जिसका शिलान्यास असत्य पर हुआ हो।

नि०—मृत्यु का सामना करने से भागना असत्य है मै मानती हूँ, पर इससे भी बड़ा असत्य है जीवन को पीठ दिखाना।

श०—मै जीवन को पीठ दिखा रहा हूँ क्या तुम यह सिद्ध कर सकती हो ?

नि०—असिद्ध सत्य सिद्ध सत्य से छोटा नही होता। फिर भी कम से कम इतना तो सिद्ध कर सकती हूँ कि जीवन अभी तुम्हारा मुख देखता रहना चाहता है।

श०—और इसका कारण है शायद मेरे प्रति उसका ममत्व।

नि०—ममत्व तुमसे अधिक तुम्हारे विचारो के प्रचार के प्रति।

श०—पर मेरे जिन विचारों का उपहास स्वयं मेरा आचरण ही करता हो उनके प्रचार से ही क्या लाभ ? नही, देवि निर्झरिणी ! मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ अब कृपया इस विषय पर मुझ से अधिक आग्रह न करो।

नि०—शशांक, मै आग्रह न करूँ यह कैसे संभव है जब कि मैं जानती हूँ कि तुम्हारे जीवन का महत्त्व ....।

श०—जीवन का महत्त्व तभी तक है देवि, जब तक मृत्यु का रहस्य समझ में न आवे। और याद रक्खो, मृत्यु भी उसी ने बनाई है, जिसने जीवन बनाया है।

नि०—जिसने मृत्यु बनाई है, यदि उसी ने जीवन भी बनाया है तो जीवन को अधिकार है कि वह मृत्यु के सामने एक बार

आँचल फैला कर कोई भीख माँग ले। तुम जीवन के अधिकार बन कर न सही, मृत्यु के उपहार बन कर ही लौट आओ।

श०—देवि निर्झरिणी, मै स्वीकार करता हूँ कि यदि मैं स्वयं मृत्यु होता तो तुम्हारी वाणी के सम्मोहन के वश हो कर, ऐसी कोई वस्तु नही होती, मै जिसकी भीख तुम्हें न दे डालता। पर मैं तो केवल उसका एक शिकार हूँ, मेरे प्राण उसकी थाती, और जो वस्तु स्वयं मेरी नही, मैं वह कैसे दे डालूँ ?

नि०—नहीं, नहीं, शशांक ! ऐसी बात नही है, यही तो समझाने के लिए इस निशीथिनी की निस्तब्धता मे तैर कर इस विजन पर्वतमाला की दुर्लंघ्यता को कुचल कर, इस नारी जीवन की लोक-लज्जा के आवरण को चीर कर मैं तुम्हारे पास आई हूँ। यह संभव है कि अपने तर्क से मैं तुम्हे न जीत सकूँ, पर स्त्री का बल तर्क नहीं हठ है और · और तुम्हारे सम्मुख आज मैं स्त्री बन कर ही खडी हूँ।

श०—स्त्री मेरे लिए शक्ति का प्रतीक है देवि ! मैं उससे नैतिक सशक्तता की अपेक्षा करता हूँ।

नि०—नैतिक सशक्तता का नाम ले कर मेरी प्रतिस्पर्द्धा को जगाने की चेष्टा मत करो शशांक ! स्त्री मृत्यु से नहीं डरती।

श०—पर दूसरे को डर का आदेश तो देती है ?

नि०— उफ ! तुम कितने निष्ठुर हो ! क्या तुम्हारे तर्कों का तूणीर आत्म-समर्पण करने वालो के हृदय पर बरसने के लिए ही भरा हुआ है ?

श०—देवि ! मैं जो कुछ कहता हूँ वह मेरा तर्क नहीं केवल

मेरे सत्य का नम्र निवेदन है।

नि०—तो फिर तुम्हारे सत्य के सम्मुख जीवन के कल्याण के नाम पर, कला की साधना-संरक्षण के नाम पर और 'और एक स्त्री के एक पुरुष से वर याचना करने के नैसर्गिक अधिकार के नाम पर मै अपना आँचल फैला कर आज तुम्हारे प्राणों की भीख माँग रही हूँ। (घुटने टेकती है) शशांक, तुम मुझे अपने सत्य का अंतिम उत्तर सुना दो।

श०—सत्य का उत्तर सर झुका कर नही, सर ऊँचा करके सुना देवि ! (निर्झरिणी को उठाते हैं)

नि०—कहो।

श०—अपनी कला की मर्यादा की रक्षा के लिए, अपने विचारो के परिपालन के लिए और अपने विश्वासों की घोषणा के लिए यदि आवश्यकता हो तो शशांक को मरना ही पड़ेगा और शशांक मरेगा।

नि०— .. .

श०—देवि निर्झरिणी !

नि०—शशांक !

श०—क्या मैं आशा करूँ कि तुम मुझे क्षमा करोगी ?

नि०—यदि कोई आशा मैं तुम्हे दे सकती हूँ तो इतनी ही कि यदि शशांक मरेगा तो निर्झरिणी भी मरेगी।

श०—पर यह तो उचित नही है। तुम्हारा सत्य तो तुम्हे मरने के लिए बाध्य नही करता ?

नि०—मेरा सत्य मुझे बाध्य करता है कि जिस पथ पर तुम

जा रहे हो उसी पर मैं भी चलूँ।

श०—यदि ऐसा है तो फिर मुझे अधिकार है कि मैं तुम्हे सूचित करूँ कि जिस पथ पर मै जा रहा हूँ वह कितना संकटापन्न है और··

नि०—और मुझे भी अधिकार है कि मे तुमसे कह दूँ कि मुझे तुम्हारी सूचना की कोई आवश्यकता नही। पर अब यह प्रसंग नही समाप्त होता है शशांक! मुझे आशीर्वाद दो कि मै तुम्हारे पथ पर चल सकूँ।

श०—मै अपने को आशीर्वाद देने के योग्य तो नही मानता, पर हाँ मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ होगी।

नि०—मेरे लिए इतना ही बहुत है (पद-धूलि लेने के लिए झुकती है)

श०—मुझे तुमसे महान आशाएँ हैं· प्रहरी! (दोनों प्रहरी निकट आते हैं) अच्छा देवि, अब मुझे आज्ञा दो।

[शशाक कारागृह की ओर लौटते हैं। पीछे-पीछे दोनों प्रहरी जाते हैं। कारागृह का लौह द्वार झन-झनाहट के साथ बन्द हो जाता है। बहुत दूर पर कोई पत्ती करुण स्वर से बोल उठता है। पहाड़ी नदी के कलकल को भग कर पर्वत से लुढक कर गिरती हुई किसी चट्टान की खड़खड़ाहट की आवाज आती है, आकाश मे एक तारा टूट कर अंधकार के वक्ष पर प्रकाश की एक रेखा सी खींचता हुआ न जाने किधर विलीन हो जाता है। निर्झरिणी सज्ञा-शून्य सी निस्पंद नीरव खड़ी कारागृह के उस लौह-द्वार की ओर निर्निमेष देख रही है।]

नि०—आशाएँ· मुझ से तुम्हे?···(सामने चन्द्रसेन के

साथ सम्राट् समुद्रगुप्त का प्रवेश)

स०—नर्तकी !

नि०—सम्राट् ! (चन्द्रसेन दूसरी ओर चले जाते हैं)

स०—रात्रि का अन्तिम प्रहर, पर्वत-शिखर पर कारागृह का यह लौह-द्वार और एकाकिनी तुम—इसका अर्थ ?

नि०—मै आचार्य शशांक को उनके पथ पर से लौटाने आई थी सम्राट्, पर अब उनके ही पथ पर चलने जा रही हूँ।

स०—और इसका कारण ?

नि०—आचार्य शशांक जिस कला के मूर्तिमान स्वरूप है, उसी की मै एक तुच्छ आराधिका हूँ, जो उनका सत्य है वही मेरा आलोक-स्तंभ है, जो उनका पदचिह्न है वही मेरा पथ।

स०—किन्तु आचार्य शशांक राजसत्ता के विरोधी हैं, राजद्रोही हैं, क्या तुम्हे मालूम है ?

नि०—वे जो कुछ है वह इसलिए कि वैसा होना उनके सत्य का अनुरोध है, और ईश्वर का बनाया हुआ सत्य मनुष्य की बनाई हुई राजसत्ता से कही अधिक अनुल्लंघनीय है।

स०—पर मनुष्य की बनाई हुई राजसत्ता भी ईश्वर के बनाये हुए इस सत्य का ही एक निदर्शन है कि जीवन का स्वस्थ विकास संगठन से ही हो सकता है और सगठित शक्ति का जो भी प्रतीक हो उसे अपनी छाया मे उगते हुए जीवन के प्रत्येक अंकुर से अकुंठित श्रद्धांजलि ग्रहण करने का निर्विवाद अधिकार होना चाहिए। फिर राजसत्ता के प्रति विद्रोह को घोषणा करना क्या ईश्वरीय सत्य का उल्लंघन करना नही है।

उसे अंगीकार कर ले। यह तो अधिकारो का एक संग्राम है सम्राट्, जिसमे राजसत्ता को गर्व है अपने पशुत्व का और कलाकार को अपने देवत्व का।

स०—तो नर्तकी निर्झरिणी, तुम्हारा त्याग-पत्र पाने और तुम्हारी वाणी से राज-द्रोह के ऐसे विस्फोटक अग्नि-कण झरते देखने के बाद क्या मेरा यह अनुमान करना युक्तिसंगत न होगा कि आचार्य शशांक ने अपने बाद अधिकारो के इस संग्राम के सेनानायकत्व के लिए तुम्हारा ही वरण किया है ?

नि०—उन्होने वरण नही किया है सम्राट्, मै ही स्वयंवरा बनी हूँ। उन्होने तो केवल मार्ग-निर्देश किया है, उसपर चलने के लिए मुझे प्रेरणा मेरी आत्मा ने ही दी है।

स०—फिर मेरा यह समझना भी संभवतः उपयुक्त ही होगा कि उस मार्ग पर पाँव रखने के पहले उसकी संभावना क्या है तुमने इसकी भी कल्पना कर ली है।

नि०—मुझे अपनी कल्पनाशक्ति से अधिक बल अपने इस विश्वास का है कि राजसत्ता के हाथो मे उत्पीड़न की जितनी शक्ति हो सकती है, उससे अधिक शक्ति रहती है कलाकार के हृदय मे उसे सहन कर क्षमा कर देने की।

स०—निर्झरिणी !

नि०—सम्राट् !

स०—मै चाहता हूँ तुम समझो कि तुम क्या कह रही हो !

नि०—और मैं चाहती हूँ कि मै जो कहती हूँ आप उसपर विश्वास कर लें।

स०—विश्वास···निर्झरिणी, तुमने अपने जीवन मे विश्वास करना सीखा है ?

नि०—हाँ सम्राट् बहुत कुछ ! मुझे विश्वास है कि अभी सूर्योदय होने से पूर्व राजसत्ता इस पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ कर नीचे बहती हुई इस पहाड़ी नदी में एक मानव का रक्त तर्पण कर उससे सगर्व पूछेगी मेरी भुजाओं में कितना बल है और मुझे विश्वास है तब उस पहाड़ी नदी की रक्त-रंजित लहरें हँस कर उत्तर देंगी—तुम्हारी भुजाओं के बल से अधिक है उसके हृदय का बल जिसका बलिदान ही आज तुम्हारा ताण्डव बना है और तब सम्राट, मुझे विश्वास है कि···

स०—उफ·· ठहरो निर्झरिणी ! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। तुम उसे सुनो, उसे समझो और फिर उसपर विश्वास करो, करोगी ?

नि०—मैं सुन रही हूँ।

स०—इस समय यहाँ मैं तुम्हारे सम्मुख भारत-सम्राट् के रूप में नहीं एक मनुष्य के रूप में खड़ा हूँ, और जो मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ वह राजसत्ता का आज्ञा-विधान नहीं एक व्यक्ति का अनुरोध है। निर्झरिणी, इस समय तुम्हारी आँखों में अपनी शक्तिसत्ता की विद्युत् रेखा की चकाचौंध भरने के विपरीत मैं तुम्हारे कानों में अपनी दुर्बलता को एक सलज्ज स्वीकृति पहुँचाना चाहता हूँ···मैं···मैं···

नि०—मैं इसके लिए कृतज्ञ हूँ।

स०—और इससे भी अधिक कृतज्ञ तुम्हारा मैं होऊंगा

निर्झरिणी, यदि तुम किसी प्रकार भी ऐसा प्रयत्न कर सको कि भारत की राजसत्ता के कोप के अग्निकांड मे भारत के महान कलाकार आचार्य शशांक अपने आप को कूदने से रोक ले।

नि०—सम्राट्!

स०—मुझे केवल समुद्रगुप्त कहो निर्झरिणी!

नि०—क्या आपके कहने का अभिप्राय यह है कि मैं आचार्य शशांक को राजसत्ता के सम्मुख नतमस्तक होने के लिए प्रेरित करूँ?

स०—संधि-सूत्र मे आबद्ध हो कर हाथ मिलाना नत-मस्तक होना नही है निर्झरिणी! मैं विजय-पराजय की प्रतिस्पर्द्धा की तनातनी ले कर नही, मैत्री के पारस्परिक अभिज्ञान की स्पृहता ले कर उनसे मिलना चाहता हूँ। मैं भूलना चाहता हूँ कि मैं सम्राट् हूँ, चाहता हूँ कि वे भूल जायँ कि वे कलाकार है। हम दोनो मनुष्य के रूप मे ही एक दूसरे का आलिंगन कर सकते है। और निर्झरिणी, मेरा अनुरोध है कि मेरी इस भावना को तुम समझो, इस पर विश्वास करो और यदि हो सके तो मुझे इसमे ''अरे!'''

[आकाश में प्रत्यूष का पीलापन भीन रहा है। दक्षिणी वायु अँगड़ाई ले उठी है। दूर पर जागृति का निःश्वासन बन एक कोयल कूक रही है और तब इसी समय कारागृह के प्राचीरों में सहम कर सिमटी हुई निस्तब्धता मे से अलौकिक संगीत का मधुमय उच्छ्वास उस लौहद्वार के ऊपर से छलक कर मानो दिशाओं में चारों ओर उमड़ पड़ता है।]

नि०—आचार्य शशांक स्वर-साधना कर रहे हैं'''' सुन

लो '' ''इसे अंतिम बार सुन लो''

स०—अंतिम बार! ...

[सगीत की स्वर-लहरी धीरे-धीरे उद्यान की तरह उठती हुई दिशाओं मे गूँजती, पर्वत शिखरों और शिला-खडों से टकराती, प्रतिध्वनि के रूप मे लौट कर फिर मानो कारागृह की अधकार विनिमज्जित नीरवता मे डूब जाती है। सम्राट् क्रूरता के ककाल की तरह खड़े लौह-द्वार को देखते हुए स्वप्निल, आत्म विस्मृत, मूक, निश्चेष्ट खड़े न जाने क्या सोच रहे हैं, इतने मे ही लौह-द्वार के पीछे से एक झनकार होती है, कारागृह का पाषण हृदय मानो सचेत हो उठता है, न जाने कितने लोहे और पत्थर के टुकड़े आपस मे टकरा कर एक कर्कश झनझनाहट से बज उठते हैं। लौहद्वार धीरे धीरे खुलता है और उसके अधकार में से उषा की मुसकान की तरह गैरिक वस्त्र पहने आचार्य शशाक प्रवेश करते हैं और उनके पीछे हैं सामत चन्द्रसेन और दो सशस्त्र प्रहरी। सम्राट् आचार्य शशाक को देख कर पहले तो हतबुद्धि से रह जाते हैं मानो आचार्य एक अभौतिक अदृष्टपूर्व आलोक-पुज हैं जिसे वे पहचान भी न पाये, पर फिर परिचय की छाया आँखों मे लौट आती है और सम्राट् वेग से आगे बढते हैं।]

स०—आचार्य शशांक!

श०—सम्राट्!

स०—यह संगीत था या विभ्रम?

श०—शायद सम्राट् का अभिप्राय मेरी स्वर-साधना से है?

स०—मैं पूछता हूँ क्या यह आप का ही संगीत था, इस कंठ की ही स्वर-लहरी, इस वाणी का ही इन्द्रजाल?

श०—हाँ, मैं गा रहा था सम्राट् !...

स०—यदि इसे ही गाना कहते हैं तो अमृतवर्षा किसे कहते हैं ?...शशांक !...शशांक !...(झपट कर उन्हें आलिंगन-पाश में जकड़ लेते हैं ।) क्षमा !...क्षमा !...

श०—(आलिंगन में से धीरे धीरे निकल कर) सम्राट्, अब सूर्योदय होने को ही है; और वह पर्वत-शिखर और उस पहाड़ी नदी की लहरें शायद मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं...अब मुझे आज्ञा दें !

स०—आचार्य ! आप की प्रतीक्षा जीवन कर रहा है, जिसे इस मर्त्य भूमि में अमरत्व की साधना करनी है। और मैं आप को जीवन के पास लौटा ले चलने आया हूँ। आप को मेरे साथ लौटना ही होगा। सामन्त चन्द्रसेन, आचार्य शशांक को आश्रम में पहुँचाने के लिए रथ का प्रबन्ध करो...और...और साथ ही राजधानी में घोषित कर दो कि आज रात्रि में आचार्य के आश्रम में संगीत-समारोह होगा जिसमें भारत-सम्राट् समुद्रगुप्त की ओर से स्वागत का...

शशांक—निर्झरिणी !...अरे...(निर्झरिणी मूर्च्छित होती है, सम्राट झपट कर उसे पकड़ लेते हैं)

स०—निर्झरिणी ! निर्झरिणी !...यह तो मूर्च्छित हो गई। पानी...पानी...सामन्त, पानी लाओ।...(सामन्त चन्द्रसेन पानी के लिए दौड़ते हैं। सम्राट् निर्झरिणी को शिला-खण्ड पर लिटा कर अपने उत्तरीय से उसे हवा करते हैं। और तभी प्राची में बालसूर्य की स्वर्णिम किरणें खिल कर हँस पड़ती हैं।)

[पटाक्षेप]